ईश्वर का सच्चा स्वरूप

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरँ शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥
यजुर्वेद ४०/८

॥ ओ३म् ॥

योगाभ्यास की प्रारम्भिक शिक्षा

महर्षि पतञ्जलि के योग शास्त्र की
महर्षि व्यास भाष्य में, भोजवृत्ति में व
महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों में
यम, नियम, आसन, प्राणायाम की
फल सहित की गई ज्यों की त्यों व्याख्या।

: संकलन कर्ता :
स्वामी धर्मानन्द सरस्वती

: प्रकाशक :
आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय
आबू पर्वत, जि० सिरोही (राजस्थान)

प्रथम आवृत्ति : आश्विन शुक्लपक्ष, दशहरा २०६५

प्रत : २०००

मूल्य : रू. २०-००

अक्षर संयोजन :
यश कॉम्प्यूटर - चांदलोडीया, अहमदाबाद, दूरभाष : २७६००१७९

मुद्रक :
यश प्रिन्टर्स
३८-३९ फरियावाला एस्टेट
इसनपुर नारोल हाईवे, अहमदाबाद - ४३
दूरभाष : (०७९) २५७३११६४

: पुस्तक प्राप्तिस्थान :

१. आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय देलवाड़ा आबूपर्वत
जि. सिरोही (राजस्थान) पिन ३०७ ५०१
दूरभाष : २९७४ - २३८५०३
२. आर्यसमाज मन्दिर, महर्षि दयानन्द मार्ग
रायपुर दरवाजे के बाहर, अहमदावाद,
(गुजरात) पिन ३८० ०२२ दूरभाष : २५४५४३७३
३. विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द
४४०८, नई सड़क (दिल्ली) - ११० ००६
दूरभाष : २३९७७२१६
४. पूनमचन्द नागर
वैदिक विचार साधना
नूतन क्लोथ मार्केट, रायपुर दरवाजा बाहर
अंकुर टेक्सटाइल्स के पास, अहमदाबाद - ३८० ०२२
चलभाष : ९८७९७६६२८८

प्रकाशकीय

जन्म जन्मान्तरों के शुभ कर्मों के द्वारा आत्मा को मानव योनी प्राप्त होती है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। मानव जीवन का मुख्य लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना है। मानव को मुख्य लक्ष्य, मोक्ष प्राप्ति का जो ज्ञान परमपिता परमात्मा ने वेदों में दिया है। उसी ज्ञान के अनुसार कर्म करके हमारे अनेकों ऋषि मुनियों ने मोक्ष प्राप्त किया। अत्यन्त दयालु महर्षि पतञ्जलि ने मानव कल्याण के लिए उसी ज्ञान को योग शास्त्र की रचना कर विस्तार से समझाया है। जिस मानव को मोक्ष प्राप्ति (संसार के बनाने वाले व संसार को चलाने वाले परमपिता परमात्मा से मिलने) की इच्छा हो, वह इस शास्त्र को समझ कर उस ज्ञान के अनुसार कर्म करे।

आज जीवन का मुख्य लक्ष्य, मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले योग मार्ग के पथिक जिज्ञासुओ को योगशास्त्र का सत्य ज्ञान प्राप्त नहीं हो रहा है। जिससे साधना की इच्छा रखने वाले साधक, अज्ञानी, धूर्त एवं ढोंगी, जो योगी बनने का झूठा दम्भ भरते हैं, उनके जाल में फंसकर अपना समय व धन का नाश कर रहे हैं। महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि - "मैं ब्रह्मा से लेकर जैमिनी पर्यन्तों को ऋषि मानता हूँ।" इन पाँच हजार वर्षों में कोई ऐसा ऋषि नहीं हुआ जिसने ब्रह्म का साक्षात्कार किया हो। पर आज देश के कोने कोने में योग के शिविर लग रहे हैं। पौराणिक बन्धुओं में नकली ब्रह्मज्ञानियों की बाढ़ आई हुई है, तो आर्यसमाजी

बन्धु भी इस दौड़ में पीछे रहना नहीं चाहते। इन में भी बहुत से ब्रह्मज्ञानी होने का झूठा दम्भभर रहे हैं।

ऐसी अवस्था को देखकर साधना की इच्छा रखने वाले धार्मिक बन्धुओं के हितार्थ योगशास्त्र के यम, नियमों की व आसन, प्राणायाम की उनके फल सहित, महर्षि व्यासदेव, राजर्षि भोजदेव व महर्षि दयानन्द द्वारा की गई व्याख्या ज्यों की त्यों इस पुस्तक में प्रकाशित करवा रहे हैं। जिससे साधना के पथ पर चलने वाले साधक को सही मार्ग का ज्ञान हो सके।

जैसे कि पतञ्जलि मुनि ने योगशास्त्र के साधना पाद को प्रारम्भ करते हुए पहले सूत्र में पहले ही लिखा है कि - "एकाग्र चित्त वाले के लिए प्रथम समाधि पाद में योग का उपदेश किया गया।" विक्षिप्त चित्त वाला भी योग से किस प्रकार युक्त होता है, यह द्वितीय साधना पाद में आरम्भ किया जाता है।

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास में लिखा है कि "जो उपासना का आरम्भ करना चाहे, उसके लिए यहाँ से आरम्भ है।" लिखकर आगे योगशास्त्र के यम नियमों की व्याख्या की है।

- **स्वामी धर्मानन्द**

॥ ओ३म् ॥

॥ ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ॥

अथ पातञ्जल - योगदर्शनम्

अथ द्वितीयः साधनपादः प्रारभ्यते -

उद्दिष्टः समाहितचित्तस्य योगः । कथं व्युत्थितचित्तोऽपि योग-युक्तः स्यादित्येतदारभ्यते -

अर्थ - (**उद्दिष्टः समाहितचित्तस्य योगः**) एकाग्र चित्त वाले के लिये प्रथम समाधि पाद में योग का उपदेश किया गया । (**कथं व्युत्थितचित्तोऽपि योगयुक्तः स्यादित्येतदारभ्यते**) किस प्रकार विक्षिप्त चित्त वाला भी योग से युक्त होता है, यह इस द्वितीय साधन पाद में आरम्भ किया जाता है -

तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः ॥१॥

सूत्रार्थ : तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान यह योग की क्रिया है ॥१॥

व्यासभाष्यम् : नातपस्विनो योगः सिध्यति । अनादिकर्म-क्लेशवासनाचित्रा प्रत्युपस्थितविषयजाला चाशुद्धिर्नान्तरेण तपः संभेदमापद्यत इति तपस उपादानम् । तच्च चित्तप्रसादनमबाधमान-मनेनाऽऽसेव्यमिति मन्यते ।

स्वाध्यायः प्रणवादिपवित्राणां जपो मोक्षशास्त्राध्ययनं वा । ईश्वरप्रणिधानं सर्वक्रियाणां परमगुरावर्पणं तत्फलसंन्यासो वा ॥१॥

स हि क्रियायोगः -

व्यास-भाष्य-पदार्थ : (नातपस्विनो योगः सिध्यति) तप रहित पुरुष को योग सिद्ध नहीं होता । **(अनादिकर्मक्लेशवासनाचित्रा प्रत्युपस्थितविषयजाला चाशुद्धिः)** अनादि काल से कर्म, क्लेश और वासनायें बुद्धि में चित्रित हुई विषयजाल को उठानेवाली अशुद्धि है **(नान्तरेण तपः संभेदमापद्यते)** वह वासनायें कर्म आदि बिना तप के नाश को प्राप्त नहीं होती **(इति तपस उपादानम्)** इस कारण तप का ग्रहण है । **(तच्च चित्तप्रसादनमबाधमानमनेनाऽऽसेव्यमिति मन्यते)** और वह तप चित्त का प्रसन्न करने वाला है, निरन्तर अर्थात् लगातार सेवन करने योग्य है, ऐसा योगी लोग मानते हैं ।

(स्वाध्यायः प्रणवादिपवित्राणां जपो मोक्षशास्त्राध्ययनं वा) ओङ्कार आदि पवित्र करने वाले नामों का जप और मुक्ति प्रतिपादक शास्त्रों का पढ़ना "स्वाध्याय" कहलाता है ।

(ईश्वरप्रणिधानं सर्वक्रियाणां परमगुरावर्पणं तत्फलसंन्यासो वा) सर्व क्रियाओं को उस परम गुरु परमात्मा को अर्पण करना और उनके फल की इच्छा का त्याग करना अर्थात् निष्काम करना "ईश्वरप्रणिधान" कहलाता है ॥१॥

(स हि क्रियायोगः) निश्चय वह योग की क्रिया -

भावार्थ : बहुत से लोग यह समझते हैं कि तप करने से शरीर में रोगादि उत्पन्न हो जाते हैं । परन्तु यहाँ महर्षि व्यास ने तप को चित्त का प्रसन्न करने वाल बतलाया है । इसलिये जानना चाहिए कि विधि पूर्वक तप करना चाहिए, जिससे धातु और रसादिक विषमता को प्राप्त न हो ॥१॥

भोज-वृत्ति : तदेवं प्रथमे पादे समाहितचित्तस्य सोपायं योगमभिधाय व्युत्थितचित्तस्यापि कथमुपायाभ्यासपूर्वको योगः स्वास्थ्यम् उपयातीति तत्साधनानुष्ठानप्रतिपादनाय क्रियायोगमाह ।

तपः शास्त्रान्तरोपदिष्टं कृच्छ्रचान्द्रायणादि । स्वाध्यायः प्रणव-पूर्वाणां मन्त्राणां जपः । ईश्वरप्रणिधानं सर्वक्रियाणां तस्मिन्परमगुरौ फलनिरपेक्षतया समर्पणम् । एतानि क्रियायोग इत्युच्यते ॥१॥ स किमर्थ इत्यत आह -

भोज-वृत्ति-पदार्थ : (तदेवं प्रथमे पादे समाहितचित्तस्य सोपायं योगमभिधाय) वह इस प्रकार प्रथम पाद में एकाग्र चित्त वाले के लिये उपाय सहित योग का कथन करके **(व्युत्थितचित्तस्यापि कथमुपायाभ्यासपूर्वको योगः स्वास्थ्यमुपयातीति)** व्युत्थान चित्त वाले को भी किस प्रकार अभ्यास पूर्वक उपायों द्वारा किया गया योग स्थिरता को प्राप्त कराता है **(तत्साधनानुष्ठान- प्रतिपादनाय क्रियायोगमाह)** उस के साधन और अनुष्ठान को वर्णन करने के लिये प्रथम क्रियायोग को कहते हैं ।

(तपः शास्त्रान्तरोपदिष्टम्) शास्त्र में कहा हुआ तप है **(कृच्छ्र-चान्द्रायणादि)** जो कृच्छ्र चान्द्रायणादि है । **(स्वाध्यायः प्रणवपूर्वाणां मन्त्राणां जपः)** मन्त्रों के पूर्व में ओंकार लगा कर जप करना "स्वाध्याय" कहलाता है । **(ईश्वरप्रणिधानं सर्वक्रियाणां तस्मिन्परमगुरौ फलनिरपे-क्षतया समर्पणम्)** सर्वक्रियाओं को फल की अपेक्षा से रहित उस परम गुरु में अर्पण करना "ईश्वरप्रणिधान" कहलाता है । **(एतानि क्रियायोग इत्युच्यते)** इन को "क्रियायोग" कहते हैं ॥१॥

(स किमर्थ इत्यत आह) वह किस प्रयोजन से की जाती है, यह अगले सूत्र में वर्णन करते हैं -

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः ॥२८॥

सूत्रार्थ : योग के अङ्गों का अनुष्ठान करने से क्लेशरूपी अशुद्धि के नाश होने पर विवेकख्याति पर्यन्त ज्ञान का प्रकाश होता है ॥२८॥

व्यासभाष्यम् : योगाङ्गान्यष्टावभिधायिष्यमाणानि । तेषामनुष्ठानात्यञ्चपर्वणो विपर्ययस्याशुद्धिरूपस्य क्षयो नाशः । तत्क्षये सम्यग्ज्ञानस्याभिव्यक्तिः । यथा यथा च साधनान्यनुष्ठीयन्ते तथा तथा तनुत्वमशुद्धिरापद्यते । यथा यथा च क्षीयते तथा तथा क्षयक्रमानुरोधिनी ज्ञानस्यापि दीप्तिर्विवर्धते । सा खल्वेषा विवृद्धिः प्रकर्षमनुभवत्या विवेकख्यातेः, आ गुणपुरुषस्वरूप विज्ञानादि-त्यर्थः । [योगाङ्गानुष्ठानमशुद्धेर्वियोगकारणम् ।

यथा परशुश्छेद्यस्य । विवेकख्यातेस्तु प्राप्तिकरणं यथा धर्मः सुखस्य नान्यथा कारणम् । कति चैतानि कारणानि शास्त्रे भवन्ति । नवैवेत्याह । तद्यथा -

"उत्पत्तिस्थित्यभिव्यक्तिविकारप्रत्ययाप्तयः ।
वियोगान्यत्वधृतयः कारणं नवधा स्मृतम्" ॥ इति ॥

तत्रोत्पत्तिकारणं मनो भवति विज्ञानस्य, स्थितिकारणं मनसः पुरुषार्थता, शरीरस्येवाऽहार इति । अभिव्यक्तिकारणं यथा रूपस्याऽऽलोकस्तथा रूपज्ञानं, विकारकारणं मनसो विषयान्तरम् । यथाऽग्निः पाक्यस्य । प्रत्ययकारणं धूमज्ञानमग्निज्ञानस्य । प्राप्तिकारणं योगाङ्गानुष्ठानं विवेकख्यातेः ।

वियोगकारणं तेदवाशुद्धे । अन्यत्वकारणं यथा सुवर्णस्य सुवर्णकारः । एवमेकस्य स्त्रीप्रत्ययस्याविद्या मूढत्वे द्वेषो दुःखत्वे रागः सुखत्वे तत्त्वज्ञानं माध्यस्थ्ये । धृतिकारणं शरीरमिन्द्रियाणाम् तानि च तस्य महाभूतानि शरीराणां, तानि च परस्परं सर्वेषां तैर्यग्यौनमानुषदैवतानि च परस्परार्थत्वादित्येवं नव कारणानि । तानि च यथासंभवं पदार्थान्तरेष्वपि योज्यानि । योगाङ्गानुष्ठानं तु द्विधैव कारणत्वं लभत इति] ॥२८॥ तत्र योगाङ्गान्यवधार्यन्ते -

व्यास-भाष्य-पदार्थ : (योगाङ्गान्यष्टावभिधायिष्यमाणानि) योग के आठ अङ्ग हैं जो आगे कहे जायेंगे। **(तेषामनुष्ठानात्पञ्चपर्वणो-विपर्ययस्याशुद्धिरूपस्य क्षयो नाशः)** उनके अनुष्ठान करने से अशुद्धि रूप पाँच भेदों वाली अविद्या का क्षय अर्थात् नाश होता है। **(तत्क्षये सम्यग्ज्ञास्याभिव्यक्तिः)** उस के नाश होने पर यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति होती है। **(यथा यथा च साधनान्यनुष्ठीयन्ते)** जैसे जैसे योग के अङ्गों का अनुष्ठान किया जाता है **(तथा तथा तनुत्वमशुद्धिरापद्यते)** वैसे वैसे अविद्यारूपी अशुद्धि न्यून होती जाती है। **(यथा यथा च क्षीयते)** जैसे जैसे अशुद्धि नाश को प्राप्त होती है **(तथा तथा क्षयक्रमानुरोधिनी ज्ञानस्यापि दीप्तिर्विवर्धते)** वैसे वैसे क्षय क्रमानुसार ज्ञान का प्रकाश भी बढ़ता है। **(सा खल्वेषा विवृद्धिः)** निश्चय यह वृद्धि **(प्रकर्षमनुभवत्या विवेकख्यातेः)** विवेकख्याति पर्यन्त उत्कर्ष अवस्था को प्राप्त होती है, **(आ गुणपुरुषस्वरूपविज्ञानादित्यर्थः)** गुणों से लेकर पुरुष स्वरूप ज्ञान तक प्रकाश होता है, यह अर्थ है।

योगाङ्गानुष्ठानमशुद्धेर्वियोगकारणम् - देखो ! यह फिर किसी अज्ञानी आधुनिक ने मन घड़न्त पुनरुक्ति उठाई क्योंकि योगाङ्ग अनुष्ठान से अशुद्धि का नाश इसी सूत्र के भाष्य में ऊपर कह चुके और उससे आगे अनावश्यक अज्ञानियों के समान प्रलाप किया है इस कारण त्याज्य है और सूत्र का भाष्य सम्पूर्ण रीति से ऊपर हो चुका है। त्याज्य होने से मूलमात्र लिख दिया जाता है अर्थ करने की आवश्यकता नहीं ॥२८॥

(तत्र योगाङ्गन्यवधार्यन्ते) उस विषय में योग के अङ्गों को बतलाते हैं -

भोज-वृत्ति : योगाङ्गानि वक्ष्यमाणानि तेषामनुष्ठानाज्ज्ञानपूर्वकादभ्यासादाविवेकख्यातेरशुद्धिक्षये चित्तसत्त्वस्य प्रकाशावरणल-

क्षणक्लेशरूपाशुद्धिक्षये या ज्ञानदीप्तिस्तारतम्येन सात्त्विकः परिणामो विवेकख्यातिपर्यन्तः स तस्याः ख्यातेर्हेतुरित्यर्थः ॥२८॥

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षय इत्युक्तं, कानि पुनस्तानि योगाङ्गानीति तेषामुद्देशमाह -

भोज-वृत्ति-पदार्थ : (**योगाङ्गानि वक्ष्यमाणानि**) योग के अङ्ग अगले सूत्र में कहे जायेंगे (**तेषामनुष्ठानाज्ज्ञानपूर्वकादभ्यासादा-विवेकख्यातेरशुद्धिक्षये**) ज्ञानपूर्वक अभ्यास द्वारा उनका अनुष्ठान करने से अशुद्धि के नाश होने पर विवेकख्याति पर्यन्त (**चित्तसत्त्वस्यप्रकाश**) चित्त का प्रकाश (**आवरणलक्षणक्लेशरूपाशुद्धिक्षये**) आवरण, क्लेशरूप अशुद्धि के नाश होने पर (**या ज्ञानदीप्तिस्तारतम्येन सात्त्विकः परिणामो विवेकख्यातिपर्यन्तः**) जो ज्ञान की दीप्ति क्रम से सात्त्विक परिणाम विवेकख्याति पर्यन्त (**स तस्यां ख्यातेर्हेतुरित्यर्थः**) वह उस ख्याति का कारण है, यह अर्थ है ॥२८॥

(**योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षय इत्युक्तं**) योगाङ्ग अनुष्ठान से अशुद्धि का नाश होता है यह कहा गया, (**कानि पुनस्तानि योगाङ्गानीति तेषामुद्देशमाह**) फिर वह योग के अङ्ग कौन से हैं ? इस कारण उन का उपदेश करते हैं -

ऋषिदयानन्द कृत व्याख्या :

(क) (**योगाङ्गानु०**) आगे जो उपासना योग के आठ अङ्ग लिखते हैं, जिसके अनुष्ठान से अविद्या आदि दोषों का क्षय, और ज्ञान के प्रकाश की वृद्धि होने से जीव यथावत् मोक्ष को प्राप्त हो जाता है ॥ पाद २, सूत्र २८ ॥- (ऋ० भूमिका, उपासना)

(ख) (**आविवेकख्यातेः**) जब तक मुक्ति न हो, तब तक उसके आत्मा का ज्ञान बराबर बढ़ता जाता है ।

- (सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास)

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणा-ध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ॥२९॥

सूत्रार्थ : यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि यह योग के आठ अङ्ग हैं ॥२९॥

व्यासभाष्यम् : यथाक्रममेषामनुष्ठानं स्वरूपं च वक्ष्यामः ॥२९॥

तत्र -

व्यास-भाष्य-पदार्थ : (**यथाक्रममेषामनुष्ठानं स्वरूपं च वक्ष्यामः**) इनका अनुष्ठान और स्वरूप यथा क्रम अगले सूत्रो में कहेंगे ।

(**तत्र**) उन में -

भोज-वृत्ति : इह कानिचित्समाधेः साक्षादुपकारकत्वेनान्तरङ्गाणि, यथा धारणादीनि । कानिचित्प्रतिपक्षभूतहिंसादिवितर्कोन्मूलनद्वारेण समाधिमुपकुर्वन्ति । यथा यमनियमादीनि । तत्राऽऽसनादिनामुत्तरोत्तरमुपकारकत्वम् । तद्यथा - सत्यासनजये प्राणायामस्थैर्यम् । एवमुत्तरत्रापि योज्यम् ॥२९॥ क्रमेणैषां स्वरूपमाह -

भोज-वृत्ति-पदार्थ : (**इह कानिचित्समाधेः साक्षादुपकारकत्वेनान्तरङ्गाणि**) इन में कोई एक समाधि के साक्षात् सहायक होने से योग के 'अन्तरङ्ग साधन कहलाते हैं,' (**यथा धारणादीनि**) जैसे धारणा, ध्यान समाधि । (**कानिचित्प्रतिपक्षभूतहिंसादिवितर्कोन्मूलनद्वारेण समाधिमुपकुर्वन्ति**) कोई एक विरोधी हुए हिंसादि वितर्को को निर्मूलता करने के कारण समाधि को सिद्ध करते हैं । (**यथा यमनियमादीनि**) जैसे यम, नियमादि (**तत्राऽऽसनादीनामुत्तरोत्तरमुपकारकत्वम्**) उन में आसनादि का उत्तरोत्तर उपकारकपन है । (**तद्यथा**) जैसे - (**सत्यासनजये प्राणायामस्थैर्यम्**) आसनजय होने पर प्राणायाम

की स्थिरता होती है । (**एवमुत्तरत्रापि योज्यम्**) इसी प्रकार अगलों में भी युक्त करना चाहिये ॥२९॥

(**क्रमेणैषां स्वरूपमाह**) इन का स्वरूप क्रम से आगे कहते हैं -

ऋषिदयानन्द कृत व्याख्या :

(**यमनियमाः**) अर्थात् एक (**यम**) दूसरा (**नियम**) तीसरा (**आसन**) चौथा (**प्राणायाम**) पाँचवाँ (**प्रत्याहार**) छठी (**धारणा**) सातवाँ (**ध्यान**) आठवीं (**समाधि**) ये सब उपासना योग के अङ्ग कहाते हैं । और आठ अङ्गो का सिद्धान्त रूप फल संयम है ॥ पाद २, सूत्र २८ ॥ - (ऋ० भूमिका, उपासना)

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥३०॥

सूत्रार्थ : उनमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय अर्थात् चोरी का त्याग, ब्रह्मचर्य अर्थात् अष्टविध मैथुन त्याग, अपरिग्रह अर्थात् लोभ रहितता यह 'यम' कहलाते हैं ॥३०॥

व्यासभाष्यम् : तत्राहिंसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः । उत्तरे च यमनियमास्तन्मूलास्तत्सिद्धिपरतयैव तत्प्रतिपादनाय प्रतिपाद्यन्ते । तदवदातरूपकरणायैवोपादीयन्ते । तथा चोक्तम् - स खल्वयं ब्राह्मणो यथा यथा व्रतानि बहूनि समादित्सते तथा तथा प्रमादकृतेभ्यो हिंसानिदानेभ्यो निवर्तमानस्तामेवावदातरूपामहिंसां करोति ।

सत्यं यथार्थे वाङ्मनसे । यथा दृष्टं यथाऽनुमितं यथा श्रुतं तथा वाङ्मनश्चेति । परत्र स्वबोधसंक्रान्तये वागुक्ता, सा यदि न वञ्चिता भ्रान्ता वा प्रतिपत्तिवन्ध्या वा भवेदिति । एषा सर्वभूतोपकारार्थं प्रवृत्ता न भूतोपघाताय । यदि चैवमप्यभिधीयमाना भूतोपघातपरैव स्यान्न सत्यं भवेत्पापमेव भवेत्तेन पुण्याभासेन पुण्यप्रतिरूपकेण कष्टं तमः प्राप्नुयात् । तस्मात्परीक्ष्य सर्वभूतहितं सत्यं ब्रूयात् ।

स्तेयमशास्त्रपूर्वकं द्रव्याणां परतः स्वीकरणं, तत्प्रतिषेधः पुनरस्पृहारूपमस्तेयमिति । ब्रह्मचर्यं गुप्तेन्द्रियस्योपस्थस्य संयमः । विषयाणामर्जनरक्षणक्षयसङ्गहिंसादोषदर्शनादस्वीकरणमपरिग्रह इत्येते यमाः ॥३०॥ ते तु -

व्यास-भाष्य-पदार्थ : (**तत्राहिंसा**) उनमें अहिंसा का वर्णन करते हैं कि (**सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः**) सर्वप्रकार से सर्वकाल में सर्व प्राणियों का चित्त में भी द्रोह न करना अहिंसा कहलाती है । (**उत्तरे च यमनियमास्तन्मूलाः**) अगले यम और नियम उस अहिंसा के मूल हैं । (**तत्सिद्धिपरतयैव तत्प्रतिपादनाय प्रतिपाद्यन्ते**) उसकी सिद्धि के कारण उसके प्रतिपादन करने के लिये कहे जाते हैं । (**तदवदातरूपकरणायैवोपादीयन्ते**) उस अहिंसा को निर्मल रूप बनाने के लिये ग्रहण किये जाते हैं । (**तथा चोक्तम्**) वैसा ही उपदेश है (**स खल्वयं ब्राह्मणो यथा यथा व्रतानि बहूनि समादित्सते**) निश्चय यह ब्राह्मण जैसे जैसे बहुत से व्रतों को धारण करने की इच्छा करता है (**तथा तथा प्रमादकृतेभ्यो हिंसानिदानेभ्यो निवर्तमानः**) वैसे वैसे प्रमाद से किये हुए हिंसादि के कारण रूप पापों से निवर्त हुआ (**तामेवावदातरूपामहिंसा करोति**) उसी "अहिंसा" को निर्मल करता है ।

(**सत्यं**) सत्य का लक्षण करते हैं (**यथार्थेवाङ्मनसे**) अर्थानुकूल वाणी और मन का व्यवहार होना । (**यथा दृष्टं यथाऽनुमितं**) जैसा देखा हो, जैसा अनुमान किया हो, (**यथाश्रुतं**) जैसा सुना हो, (**तथा वाङ्मनश्चेति**) वैसा वाणी से कथन करना और मन में धारण करना । (**परत्रस्वबोधसंक्रान्तये**) दूसरे पुरुष में अपने बोध के अनुसार ज्ञान कराने में (**वागुक्ता**) कही हुई वाणी, (**सा यदि न वञ्चिता भ्रान्ता**

वा प्रतिपत्तिवन्ध्या वा भवेदिति) वह यदि धोखा देने वाली, भ्रान्ति करने वाली, या उलटी बन्धन करने वाली न हो तो "सत्य" है । (**एषा सर्वभूतोपकारार्थं प्रवृत्ता**) यह सब भूतों के उपकार के लिये प्रवृत्त हुई हो तो, सत्य है (**न भूतोपघाताय**) न कि भूतों के नाश करने के लिये जो वाणी कही गई हो वह सत्य है, अर्थात् वह कदापि सत्य नहीं है । (**यदि चैवमप्यभिधीयमाना भूतोपघातपरैव स्यान्न सत्यं भवेत्**) यदि इस प्रकार भी विचारी हुई वाणी प्राणियों की नाश करने वाली ही हो वह सत्य नहीं है (**पापमेव भवेत्**) पापयुक्त ही है (**तेन पुण्याभासेन पुण्यप्रतिरूपकेण कष्टं तमः प्राप्नुयात्**) उस पुण्याभास पुण्य के प्रतिरूप अर्थात् पाप से बड़े दुःख को प्राप्त होता है । (**तस्मात्परीक्ष्य सर्वभूतहितं सत्यं ब्रूयात्**) इस कारण अच्छे प्रकार परीक्षा अर्थात् शास्त्र से तत्त्व निर्णय करके सर्वभूतों के हितार्थ सत्यरूप से ज्ञान प्रदान करे, उपदेश करे ।

इसका भाव यह है कि जैसे आजकल पक्षपाती लोग लोभादि के कारण सत्य शास्त्रों अर्थात् वेदानुकूल शास्त्रों को छोड़कर, उनसे विना तत्त्व निर्णय किये स्वार्थ के कारण वञ्चित और भ्रान्ति कारक ज्ञानों की कथा और उपदेश करके मनुष्यों को नर्क में पहुँचाने का उपाय करते और स्वार्थ पालन करते हैं और सन्मार्ग के ढकने में अनेक यत्नोपाय यहाँ तक कि युद्ध भी करते हैं । उनको अपने कल्याण के लिये इस महर्षि के भाष्य से शिक्षा लेनी चाहिये ।

(**स्तेयमशास्त्रपूर्वकं द्रव्याणां परतः स्वीकरणं, तत्प्रतिषेधः**) शास्त्र आज्ञा विरुद्ध धनादि का दूसरों से लेना, जिस का शास्त्र में निषेध है वह चोरी कहलाती है (**पुनरस्पृहारूपमस्तेयमिति**) फिर सर्वथा लोभ रूप ही चोरी है । (**ब्रह्मचर्यं**) ब्रह्मचर्य का अर्थ करते हैं (**गुप्तेन्द्रियस्योप-**

स्थस्य संयमः) उपस्थ इन्द्रिय का रोकना इसके यह आठ भेद हैं । १. दर्शन, २. स्पर्शन, ३. स्मरण, ४. क्रीडन, ५. कीर्तन, ६. एकान्तवास, ७. गुह्यभाषण, ८. क्रियानिवृत्ति । (**विषयाणामर्जनरक्षणक्षयसङ्ग-हिंसादोषदर्शनादस्वीकरणमपरिग्रहः**) विषयों का प्राप्त करना, फिर उनकी रक्षा करने की चिन्ता, फिर उनके नाश का चित्त में क्षोभ, फिर उनका सङ्ग और उनमें हिंसा के विचार से उनका स्वीकार न करना 'अपरिग्रह' कहलाता है (**इत्येते यमाः**) इस प्रकार यह पाँच यम कहलाते हैं ।

(**ते तु**) वह तो -

भोज-वृत्ति : तत्र प्राणवियोगप्रयोजनव्यापारो हिंसा । सा च सर्वानर्थहेतुः । तदभावोऽहिंसा । हिंसायाः सर्वकालं परिहार्यत्वात्प्रथमं तदभावरूपाया अहिंसाया निर्देशः । सत्यं वाङ्मनसयोर्यथार्थत्वम् । स्तेयं परस्वापहरणं तदभावोऽस्तेयम् । ब्रह्मचर्यमुपस्थसंयमः । अपरिग्रहो भोगसाधनानामनङ्गीकारः । त एतेऽहिंसादयः पञ्च यमशब्दवाच्या योगाङ्गत्वेन निर्दिष्टाः ॥३०॥ एषां विशेषमाह -

भोज-वृत्ति-पदार्थ : (**तत्र प्राणवियोगप्रयोजनव्यापारो हिंसाः**) उन में प्राणों का शरीर से वियोग करने के लिये जो काम किया जाता है वह हिंसा कहलाती है । (**सा च सर्वानर्थहेतुः**) वह हिंसा सर्व रूपों वाली अनर्थ का कारण है । (**तदभावोऽहिंसा**) उसका अभाव अहिंसा है । (**हिंसायाः सर्वकालं परिहार्यत्वात्**) हिंसा का सर्व काल में त्यागने योग्य होने से (**प्रथमं तदभावरूपाया अहिंसाया निर्देशः**) प्रथम उस के अभाव रूप अहिंसा का निर्देश किया है । (**सत्यं वाङ्मनसयोर्यथार्थत्वम्**) सत्य यह है कि वाणी और मन दोनों की यथार्थता अर्थात् जैसा अर्थ है उसके अनुसार ही कहना और मन में धारण

करना । (**स्तेयं परस्वापहरणं**) दूसरे के धन का हरण करना चोरी है (**तदभावोऽस्तेयम्**) उसका अभाव चोरी का त्याग कहलाता है । (**ब्रह्मचर्यमुपस्थसंयमः**) उपस्थेन्द्रिय के रोकने को ब्रह्मचर्य कहते हैं । (**अपरिग्रहो भोगसाधनानामनङ्गीकारः**) भोग साधनों का स्वीकार न करना अपरिग्रह कहलाता है । (**त एतेऽहिसादयः पञ्च यमशब्दवाच्या**) वह यह अहिंसादि पाँचो जो यम शब्द से कहने योग्य हैं (**योगाङ्गत्वेन निर्दिष्टाः**) योगाङ्ग रूप से उपदेश किये गये ॥३०॥

(**एषां विशेषमाह**) इन की विशेषता कहते हैं -

ऋषिदयानन्द कृत व्याख्या -

(क) (**तत्राहिंसा**) उन आठों में से पहला यम है । सो पाँच प्रकार का है - एक (**अहिंसा**) अर्थात् सब प्रकार से सब काल में, सब प्राणियों के साथ वैर छोड़ के प्रीति से वर्तना । दूसरा (**सत्य**) अर्थात् जैसा अपने ज्ञान में हो, वैसा ही सत्य बोलें, करें और मानें । तीसरा (**अस्तेय**) अर्थात् पदार्थ वाले की आज्ञा के बिना किसी पदार्थ की इच्छा भी न करना, इसी को चोरी त्याग कहते हैं । चौथा (**ब्रह्मचर्य**) अर्थात् विद्या पढ़ने के लिये बाल्यावस्था से लेकर सर्वथा जितेन्द्रिय हो और पच्चीसवें वर्ष से लेकर अड़तालीस वर्ष पर्यन्त विवाह का करना, पर-स्त्री, वैश्यादि का त्यागना सदा ऋतुगामी होना, विद्या को ठीक-ठीक पढ़ के सदा पढ़ाते रहना और उपस्थेन्द्रिय का सदा नियम करना । पाँचवाँ (**अपरिग्रह**) अर्थात् विषय और अभिमानादि दोषों से रहित होना । इन पाँचों का ठीक-ठीक अनुष्ठान करने से उपासना का बीज बोया जाता है ॥ पाद २, सूत्र ३० ॥ - (ऋ० भूमिका, उपासना)

(ख) अर्थात् (**अहिंसा**) निर्वैरता, (**सत्यम्**) सत्य बोलना, सत्य मानना, सत्य करना (**अस्तेयम्**) मन, वचन, कर्म से चोरी त्याग

(ब्रह्मचर्य) अर्थात् उपस्थेन्द्रिय का संयम **(अपरिग्रह)** अत्यन्त लोलुपता, स्वत्वाभिमान-रहित होना, इन पाँच यमों का सेवन सदा करें ।

– (सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास)

(ग) सर्वदा **(अहिंसा)** निर्वैरता, **(सत्यम्)** सत्य बोलना, सत्य मानना, सत्य करना **(अस्तेयम्)** मन, वचन, कर्म से अन्याय करके परपदार्थ का ग्रहण न करना चाहिए, न किसी को करने का उपदेश करें **(ब्रह्मचर्यादि)** सदा जितेन्द्रिय, अष्टविध मैथुन का त्याग रख के वीर्य की रक्षा और उन्नति करके चिरञ्जीवी होकर सब का उपकार करता रहे, **(अपरिग्रह)** अभिमान आदि दोषरहित किसी संसार के धनादि पदार्थों में मोहित होकर कभी न फंसे । इन पाँच यमों का सेवन सदा किया करें । पाद २, सूत्र ३० ॥ – (संस्कारविधि, संन्यास प्रकरण)

जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् ॥३१॥

सूत्रार्थ : और वह अहिंसा आदि जाति देश काल की सीमा से रहित समयादि निमित्त के विना पालन की हुई सार्वभौम अर्थात् सर्व चित्त की भूमि और अवस्थाओं में धारण की हुई महाव्रत रूप होती है अर्थात् न जाति के निमित्त से उसका बाध हो पावे और न देश काल निमित्त वा प्रयोजनादि से, वह ही "महाव्रत" रूप है ॥३१॥

व्यासभाष्यम् : तत्राहिंसा जात्यवच्छिन्ना मत्स्यवधकस्य मत्स्येष्वेव नान्यत्र हिंसा । सैव देशावच्छिन्ना न तीर्थे हनिष्यामीति । सैव कालावच्छिन्ना न चतुर्दश्यां न पुण्येऽहनि हनिष्यामीति । सैव त्रिभिरुपरतस्य समयावच्छिन्नाः देवब्राह्मणार्थे नान्यथा हनिष्यामीति । यथा च क्षत्रियाणां युद्ध एव हिंसा नान्यत्रेति । एभिर्जातिदेशकाल-

समयैरनवच्छिन्ना अहिंसादयः सर्वथैव परिपालनीयाः । सर्वभूमिषु सर्वविषयेषु सर्वथैवाविदितव्यभिचाराः सार्वभौमा महाव्रतमित्युच्यन्ते ॥३१॥

व्यास-भाष्य-पदार्थ : (**तत्राहिंसा जात्यवच्छिन्नाः**) उनमें जाति से बाध हुई अहिंसा का रूप यह है कि (**मत्स्यवधकस्य मत्स्येष्वेव नान्यत्र हिंसा**) मछली के मारने वाले को मछली के मारने में हिंसा है अन्यत्र नहीं इसमें एक मछली जाति की हिंसा का त्याग हुआ अन्य जाति के प्राणियों की हिंसा का त्याग न हुआ यह जाति से कटी हुई अहिंसा कहलाती है । (**सैव देशावच्छिन्नाः**) और वह देश से कटी हुई अहिंसा इस प्रकार है कि (**न तीर्थे हनिष्यामीति**) तीर्थ स्थान गुरुकुलादि में हिंसा न करूँगा, यह एक देश विशेष में अहिंसा का पालन हुआ, सर्व देश में नहीं हुआ । (**सैव कालावच्छिन्नाः**) वैसे ही वह काल से कटी हुई (**न चतुर्दश्यां न पुण्येऽहनि हनिष्यामिति**) न चतुर्दशी में न किसी पुण्यदिन में हिंसा करूँगा, यह काल से कट गई । (**सैव त्रिभिरुपरतस्य**) और वही अहिंसा तीनों प्रकार से उपराम को प्राप्त हुए कि (**समयावच्छिन्नाः**) समय से कटी हुई (**देवब्राह्मणार्थे नान्यथा हनिष्यामिति**) देव ब्राह्मण की प्रयोजन सिद्धि के लिए हिंसा करूँगा अन्य प्रयोजन से नहीं करूँगा, यह भी अहिंसा निमित्त से कट गई (**यथा च क्षत्रियाणां युद्ध एव हिंसा नान्यत्रेति**) और जैसे कि क्षत्रियों को युद्ध में हिंसा होती है अन्यत्र नहीं । (**एभिर्जातिदेशकालसमयैरनवच्छिन्नाः**) इन जाति, देश, काल समयों से न कटी हुई (**अहिंसादयः सर्वथैव परिपालनीयाः**) अहिंसादि सर्व प्रकार से पालने योग्य हैं । (**सर्वभूमिषु सर्वविषयेषु सर्वथैवाविदितव्यभिचाराः सार्वभौमा महाव्रतमित्युच्यन्ते**) सर्वभूमियों में, सर्वविषयों में, सर्व प्रकार से व्यभिचार रहित सार्वभौम वाली महाव्रता कहलाती है ॥३१॥

भोज-वृत्ति : जातिर्ब्राह्मणत्वादिः । देशस्तीर्थादिः । कालश्चतुर्दश्यादिः । समयो ब्राह्मणप्रयोजनादिः । एतैश्चतुर्भिरनवच्छिन्नाः पूर्वोक्ता अहिंसादयो यमाः सर्वासु क्षिप्तादिषु चित्तभूमिषु भवा महाव्रतमित्युच्यन्ते । तद्यथा - ब्राह्मणं न हनिष्यामि तीर्थे न कंचन हनिष्यामि चतुर्दश्यां न हनिष्यामि देव ब्राह्मणप्रयोजनव्यतिरेकेण कमपि न हनिष्यामीति । एवं चतुर्विधावच्छेदव्यतिरेकेण किंचित्क्वचित्कदाचित्कस्मिंश्चिदर्थे न हनिष्यामीत्यनवच्छिन्नाः । एवं सत्यादिषु यथायोगं योज्यम् । इत्थमनियतीकृताः सामान्येनैव प्रवृत्ता महाव्रतमित्युच्यते न पुनः परिच्छिन्नावधारणम् ॥३१॥ नियमानाह -

भोज-वृत्ति-पदार्थ : (**जातिर्ब्राह्मणत्वादिः**) जाति ब्राह्मणत्व आदि हैं । (**देशस्तीर्थादिः**) गुरुकुलादि स्थान देश हैं । (**कालश्चतुर्दश्यादिः**) चतुर्दश्यादि काल हैं । (**समयो ब्राह्मणप्रयोजनादिः**) ब्राह्मण प्रयोजनादि को समय कहते हैं । (**एतैश्चतुर्भिरनवच्छिन्नाः**) इन चारों प्रकारों से न कटे हुए । (**पूर्वोक्ता अहिंसादयो यमाः**) पूर्व कहे हुए अहिंसादि यम (**सर्वासु क्षिप्तादिषु चित्तभूमिषु भवा महाव्रतमित्युच्यन्ते**) सर्व क्षिप्तादि चित्त भूमियों में धारण की हुई महाव्रत कहलाती हैं । (**तद्यथा-ब्राह्मणं न हनिष्यामि**) उस विषय में जैसे कि ब्राह्मण को नहीं मारूँगा । (**तीर्थे न कंचन हनिष्यामि**) तीर्थ में न कुछ हिंसा करूँगा । (**चतुर्दश्यां न हनिष्यामि**) चतुर्दशी में नहीं मारूँगा । (**देवब्राह्मणप्रयोजनव्यतिरेकेण कमपि न हनिष्यामीति**) देव ब्राह्मण के प्रयोजन से भिन्न कोई भी हिंसा न करूँगा । (**एवं चतुर्विधावच्छेदव्यतिरेकेण**) इस प्रकार चारों प्रकार के बाध से बिना (**किंचित्क्वचित्कदाचित्कस्मिंश्चिदर्थे न हनिष्यामीत्यनवच्छिन्नाः**) कुछ भी, कहीं भी, कभी भी, किसी प्रयोजन से भी, हिंसा नहीं करूँगा इस प्रकार न बाध

होती हुई अहिंसा सार्वभौम महाव्रत कहलाती है । (**एवं सत्यादिषु यथायोगं योज्यम्**) इस प्रकार सत्यादि में भी यथायोग युक्त करना चाहिये । (**इत्थमनियतीकृताः सामान्येनैव प्रवृत्ताः**) इस प्रकार नियत न की हुई सामान्य रूप से प्रवृत्त हुई (**महाव्रतमित्युच्यते**) महाव्रत रूप यह कही जाती है । (**न पुनः परिच्छिन्नावधारणम्**) फिर सीमा वाली न धारण करना ॥३१॥

(**नियमानाह**) आगे नियमों को कहते हैं -

शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥३२॥

सूत्रार्थ : शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान यह पाँच नियम कहलाते हैं ॥३२॥

व्यासभाष्यम् : तत्र शौचं मृज्जलादिजनितं मेध्याभ्यवहरणादि च बाह्यम् । आभ्यन्तरं चित्तमलानामाक्षालनम् । संतोषः संनिहितसाधनादधिकस्यानुपादित्सा । तपो द्वन्द्वसहनम् । द्वन्द्वं च जिघत्सापिपासे शीतोष्णे स्थानासने काष्ठमौनाकारमौने च । व्रतानि चैषां यथायोगं कृच्छ्रचान्द्रायणसांतपनादीनि । स्वाध्यायो मोक्षशास्त्राणामध्ययनं प्रणवजपो वा । ईश्वरप्रणिधानं तस्मिन्परमगुरौ सर्वकर्मार्पणम् ॥३२॥

शय्यासनस्थोऽथ पथि व्रजन्वा स्वस्थः परिक्षीणवितर्कजालः ।
संसारबीजक्षयमीक्षमाणः स्यान्नित्ययुक्तोऽमृतभोगभागी ॥

व्यास-भाष्य-पदार्थ : (**तत्र शौचं मृज्जलादिजनितं**) उनमें शौच यह है कि मृत्तिका जलादि से शरीर (**मेध्याभ्यवहरणादि च बाह्यम्**) और पवित्र परिमित आहारादि द्वारा उदर प्रक्षालन बाह्य शौच कहलाता है । (**आभ्यन्तरं**) अन्दर की पवित्रता यह है कि (**चित्तमलानामाक्षालनम्**) चित्त के मलों का धोना अर्थात् राग, द्वेष, मद, मान,

ईर्ष्या, निन्दादि से रहित होना । (**सतोषः**) संतोष को कहते हैं (**संनिहितसाधनादधिकस्यानुपादित्सा**) समीपस्थ भोग साधनों से अधिक प्राप्ति की इच्छा न होना । (**तपो द्वन्द्वसहनम्**) तप द्वन्द्व सहन को कहते हैं । (**द्वन्द्वं च जिघत्सापिपासे शीतोष्णे स्थानासने**)और द्वन्द्व क्षुधा, तृषा, जाड़ा, गरमी, स्थान और आसन में (**काष्ठमौनाकारमौने च**) और मौन में मौन रूप काष्ठ समान अर्थात् किञ्चित् चेष्टा न करना । (**व्रतानि चैषां यथायोगं कृच्छ्रचान्द्रायणसांतपनादीनि**) व्रत यह है कि कृच्छ्र-चान्द्रायण, सांतपनादि व्रतों का यथा शक्ति करना । (**स्वाध्यायो मोक्ष-शास्त्राणामध्ययनं**) मोक्ष विषयक शास्त्रों का पढ़ना स्वाध्याय कहलाता है (**प्रणवजपो वा**) और ओंकारादि जप भी । (**ईश्वरप्रणिधानं**) अब ईश्वरप्रणिधान का अर्थ करते हैं । (**तस्मिन्परमगुरौ सर्वकर्मार्पणम्**) उस परमगुरु परमात्मा में सर्व कर्मों का अर्पण करना ।

(**शय्यासनस्थोऽथ पथि व्रजन्वा स्वस्थः**) शय्या अथवा आसन पर बैठा हुआ वा मार्ग में चलता हुआ अपने स्वरूप में स्थिर (**परिक्षीणवितर्कजालः**) वितर्करूप जाल को नष्ट किये हुए (**संसारबीजक्षयमीक्षमाणः स्यात्**) संसार बीज के नाश को विचार करता हुआ (**नित्ययुक्तोऽमृतभोगभागी**) नित्य परमात्मा में युक्त हुआ, अमृत भोग का भागी होता है अर्थात् मोक्ष को प्राप्त होता है ।

(**यत्रेदमुक्तं**) जिस विषय में यह कहा है (**ततः प्रत्यक्चेतना-धिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च (यो० सू० १-२९) इति**) उस से अन्तर्यामी परमात्मा की प्राप्ति और विघ्नों का नाश भी होता है ॥३२॥

भोज-वृत्ति : शौचं द्विविधं - बाह्यमाभ्यन्तरं च । बाह्यं मृज्जलादिभिः कायादिप्रक्षालनम् । आभ्यन्तरं मैत्र्यादिभिश्चित्तमलानां प्रक्षालनम् । संतोषस्तुष्टिः । शेषाः प्रागेव कृतव्याख्यानाः । एते शौचादयो

नियमशब्दवाच्याः ॥३२॥ **कथमेषां योगाङ्गत्वमित्यत आह** -

भोज-वृत्ति-पदार्थ : (**शौचं द्विविधः**) शौच दो प्रकार का है - (**बाह्यमाभ्यन्तरं च**) बाहर और आन्तरिक । (**बाह्यं मृज्जलादिभिः कायादिप्रक्षालनम्**) मिट्टी जलादि से कायादि का धोना बाह्य शौच कहलाता है । (**आभ्यन्तरं मैत्र्यादिभिश्चित्तमलानां प्रक्षालनम्**) मैत्र्यादि के द्वारा चित्त मलों का धोना अन्दर का शौच कहलाता है । (**संतोषस्तुष्टिः**) तृप्ति को संतोष कहते हैं । (**शेषाः प्रागेव कृतव्याख्यानाः**) शेष तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान इन तीनों का द्वितीय पाद के प्रथम सूत्र में वर्णन कर आये हैं । (**एते शौचादयो नियमशब्दवाच्याः**) यह शौचादि पाँचो नियम शब्द से कहने योग्य हैं ।

(**कथमेषां योगाङ्गत्वमित्यत**) इन का योगाङ्गत्व किस प्रकार है, इस कारण आगे कहते हैं -

ऋषिदयानन्द कृत व्याख्या -

(क) पहेला (**शौच**) अर्थात् पवित्रता करनी, सो भी दो प्रकार की है । एक भीतर की और दूसरी बाहर की । भीतर की शुद्धि धर्माचरण, सत्यभाषण, विद्याभ्यास, सत्संग आदि शुभगुणों के आचरण से होती है और बाहर की पवित्रता जल आदि से शरीर, स्थान, मार्ग, वस्त्र, खाना, पीना आदि शुद्धि करने से होती है । दूसरा (**सन्तोष**) जो सदा धर्मानुष्ठान से अत्यन्त पुरुषार्थ करके प्रसन्न रहना और दुःख में शोकातुर न होना । किन्तु आलस्य का नाम संतोष, नहीं है । तीसरा (**तपः**) जैसे सोने को अग्नि में तपा के निर्मल कर देते हैं, वैसे ही आत्मा और मन को धर्माचरण और शुभगुणों के आचरण रूप तप से निर्मल कर देना । चौथा (**स्वाध्याय**) अर्थात् मोक्ष विद्या विधायक वेदशास्त्र का पढ़ना पढ़ाना और ओंकार के विचार से ईश्वर का निश्चय

करना कराना। और पाँचवाँ (**ईश्वरप्रणिधान**) अर्थात् सब सामर्थ्य, सब गुण, प्राण, आत्मा और मन के प्रेम भाव से आत्मादि सत्य द्रव्यों का ईश्वर के लिये समर्पण करना। ये पाँच नियम भी उपासना का दूसरा अङ्ग है। पाद २, सूत्र ३२ ॥ – (ऋ० भूमिका, उपासना)

(ख) (**शौच**) अर्थात् स्नानादि से पवित्रता; (**सन्तोष**) सम्यक् प्रसन्न होकर निरुद्यम रहना सन्तोष नहीं, किन्तु पुरुषार्थ जितना हो सके उतना करना, हानि लाभ में हर्ष वा शोक न करना (**तपः**) अर्थात् कष्ट सेवन से भी धर्मयुक्त कर्मों का अनुष्ठान, (**स्वाध्याय**) पढ़ना, पढ़ाना (**ईश्वरप्रणिधान**) ईश्वर की भक्ति विशेष में आत्मा को अर्पित रखना, ये पाँच नियम कहाते हैं। यमों के विना केवल इन नियमों का सेवन न करें, किन्तु इन दोनों का सेवन किया करें। जो यमों का सेवन छोड़ के केवल नियमों का सेवन करता है, वह उन्नति को नहीं प्राप्त होता, किन्तु अधोगति अर्थात् संसार में गिरा रहता है।

– (सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास)

(ग) और इनके साथ पाँच नियम अर्थात् (**शौच**) बाहर-भीतर से पवित्र रहना (**सन्तोष**) पुरुषार्थ करते जाना और हानि लाभ में प्रसन्न और अप्रसन्न न होना (**तप**) सदा पक्षपात रहित न्यायरूप धर्म का सेवन प्राणायाम आदि योगाभ्यास करना (**स्वाध्याय**) सदा प्रणव का जप अर्थात् मन में चिन्तन और उसके अर्थ ईश्वर का विचार करते रहना। (**ईश्वरप्रणिधान**) अर्थात् अपने आत्मा को वेदोक्त परमेश्वर की आज्ञा में समर्पित करके परमानन्द परमेश्वर के सुख को जीते हुए भोग कर, शरीर छोड़ के सर्वानन्दयुक्त मोक्ष को प्राप्त होना संन्यासियों के मुख्य कर्म हैं ॥ पाद २, सूत्र ३२।

– (संस्कारविधि, संन्यासप्रकरण)

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ॥३५॥

सूत्रार्थ : अहिंसा की पूर्ण स्थिति होने पर उसके समीपवर्ती प्राणियों में भी वैर का त्याग हो जाता है ॥३५॥

व्यासभाष्यम् : सर्वप्राणिनां भवति ॥३५॥

व्यास-भाष्य-पदार्थ : (सर्वप्राणिनां भवति) समीपस्थ सर्व प्राणियों का वैर त्याग हो जाता है ॥३५॥

भावार्थ : जब योगी महाव्रतरूप अहिंसा धर्म को धारण करता है और उसकी पूर्ण दृढ़ता हो जाती है तब उसके समीपवर्ती प्राणियों का भी वैर उसके प्रभाव से निवृत्त हो जाता है। जैसा कि नकुल और सर्प में स्वाभाविक वैर है वह भी उसके प्रभाव से निवृत्त हो जाता है ॥३५॥

भोज-वृत्ति : तस्याहिंसां भावयतः सन्निधौ सहजविरोधिनामप्यहिनकुलादीनां वैरत्यागो निर्मत्सरतयाऽवस्थानं भवति । हिंस्रा अपि हिंस्रत्वं परित्यजन्तीत्यर्थः ॥३५॥

भोज-वृत्ति-पदार्थ : (तस्याहिंसां भावयतः सन्निधौ सहजविरोधिनामप्यहिनकुलादीनां वैरत्यागः) उस अहिंसा को पालन करते हुए समीपवर्ती सर्प और नकुलादि का भी जिन में स्वभाव से ही विरोध है वैर त्याग हो जाता है **(निर्मत्सरतयाऽवस्थानं भवति)** ईर्ष्या रहित रहते हैं। **हिंस्रा अपि हिंस्रत्वं परित्यजन्तीत्यर्थः)** हिंसक स्वभाव वाले भी हिंसत्व भाव को त्याग देते हैं यह अर्थ है ॥३५॥

(सत्याभ्यासवतः किं भवतीत्याह) सत्य का अभ्यास करने वाले को क्या फल होता है यह आगे कहते हैं -

ऋषिदयानन्द कृत व्याख्या -

(अहिंसा प्रति०) अर्थात् जब अहिंसा धर्म निश्चय हो जाता है,

तब उस पुरुष के मन से वैर भाव छूट जाता है, किन्तु उसके सामने वा उसके संग से अन्य पुरुष का भी वैर भाव छूट जाता है ॥ पाद २, सूत्र ३५ ॥ - (ऋ० भूमिका, उपासना)

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ॥३६॥

सूत्रार्थ : सत्य की दृढ़ स्थिति होने पर योगी की वाणी द्वारा जो क्रिया होती है उसमें फल का आश्रयत्व होता है अर्थात् उस की वाणी अमोघ होती है, भाव इसका यह जानना चाहिये कि अनधिकारी पुरुष को योगी आशीर्वाद नहीं देता ॥३६॥

व्यासभाष्यम् : धार्मिको भूया इति भवति धार्मिकः । स्वर्गं प्राप्नुहीति स्वर्गं प्राप्नोति । अमोघाऽस्य वाग्भवति ॥३६॥

व्यास-भाष्य-पदार्थ : (धार्मिको भूया इति भवति धार्मिकः) तूँ धार्मिक हो जा । योगी के इस वचन से धार्मिक हो जाता है । (स्वर्गं प्राप्नुहीति स्वर्गं प्राप्नोति) स्वर्ग को प्राप्त हो उसके वचन से स्वर्ग को प्राप्त हो जाता है । (अमोघाऽस्य वाग्भवति) इस की वाणी व्यर्थ नहीं होती ॥३६॥

भोज-वृत्ति : क्रियमाणा हि क्रिया यागादिकाः फलं स्वर्गादिकं प्रयच्छन्ति तस्य तु सत्याभ्यासवतो योगिनस्तथा सत्यं प्रकृष्यते यथा क्रियायामकृतायामपि योगी फलमाप्नोति । तद्वचनाद्यस्य कस्यचित्क्रियामकुर्वतोऽपि क्रियाफलं भवतीत्यर्थः ॥३६॥

भोज-वृत्ति-पदार्थ : (क्रियमाणा हि क्रिया यागादिकाः) यज्ञादि क्रिया की हुई **(फलं स्वर्गादिकं प्रयच्छन्ति)** स्वर्गादि फल को देती हैं **(तस्य तु सत्याभ्यासवतः योगिनः)** उस सत्य के अभ्यास करने वाले योगी को तो **(यथा सत्यं प्रकृष्यते)** ऐसा सत्य बढ़ जाता

है (**यथा क्रियायामकृतायामपि योगी फलमाप्नोति**) जैसे कोई यज्ञादि कर्म करके फल को प्राप्त होता है योगी सत्य की प्रबलता से उस फल को प्राप्त हो जाता है । (**तद्वचनाद्यस्य कस्यचित्क्रियामकुर्वतोऽपि क्रियाफलं भवतीत्यर्थः**) जैसे किसी को क्रिया करते हुए क्रिया का फल होता है इस योगी के वचन से ही वह फल हो जाता है यह अर्थ है ॥३६॥

(**अस्तेयाभ्यासवतः फलमाह**) चोरी के त्याग का अभ्यास करने वाले को फल आगे कहते हैं -

ऋषिदयानन्द कृत व्याख्या -

(**सत्यप्रति०**) तथा सत्याचरण का ठीक-ठीक फल यह है कि जब मनुष्य निश्चय करके केवल सत्य ही मानता, बोलता और करता है, तब वह जो जो योग्य काम करता है और करना चाहता है, वे वे सब सफल हो जाते हैं ॥ पाद २, सूत्र ३६ ॥ - (ऋ० भूमिका, उपासना)

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ॥३७॥

सूत्रार्थ : चोरी के त्याग में स्थिर हुए योगी को सर्वरत्नों की प्राप्ति होती है ॥३७॥

व्यासभाष्यम् : सर्वदिक्स्थान्यस्योपतिष्ठन्ते रत्नानि ॥३७॥

व्यास-भाष्य-पदार्थ : (सर्वदिक्स्थान्यस्योपतिष्ठन्ते रत्नानि) सब दिशाओं में होने वाले रत्न समीपस्थ प्राप्त होते हैं ॥३७॥

भावार्थ : इससे यह न समझना चाहिये कि सर्व दिशाओं के रत्न योगी के पास इकट्ठे हो जाते हैं । किन्तु यह जानना चाहिए योगी को आवश्यकतानुसार ईश्वर कृपा से सर्व वस्तु प्राप्त हो जाती हैं, अर्थात् उसकी जरुरत नहीं रुकती ॥३७॥

भोज-वृत्ति : अस्तेयं यदाऽभ्यस्यति तदाऽस्य तत्प्रकर्षान्नि-रभिलाषस्यापि सर्वतो दिव्यानि रत्नानि उपतिष्ठन्ते ॥३७॥ ब्रह्मचर्याभ्यासस्य फलमाह -

भोज-वृत्ति-पदार्थ : (अस्तेयं यदाऽभ्यस्यति तदाऽस्य तत्प्र-कर्षान्निरभिलाषस्यापि सर्वतो दिव्यानि रत्नानि उपतिष्ठन्ते) चोरी त्याग का जब योगी अभ्यास करता है तब इसके अभ्यास बढ़ने से वासना रहित हुए को सर्वत्र दिव्य रत्न प्राप्त हो जाते हैं । अर्थात् सर्व वस्तु इस को प्राप्त हो जाती हैं ॥३७॥

(ब्रह्मचर्याभ्यासस्य फलमाह) ब्रह्मचर्य अभ्यास का फल आगे कहते हैं -

ऋषिदयानन्द कृत व्याख्या -

(क) चोरी त्याग करने से यह बात होती है कि - **(अस्तेयप्रति०)** अर्थात् जब मनुष्य अपने शुद्ध मन से चोरी के छोड़ देने की प्रतिज्ञा कर लेता है, तब उसको सब उत्तम पदार्थ यथायोग्य प्राप्त होने लगते हैं और चोरी उसका नाम है कि मालिक की आज्ञा के बिना अधर्म से उसकी चीज़ को कपट से या छिपा कर ले लेना ॥ पाद २, सूत्र ३७ ॥

- (ऋ० भूमिका, उपासना)

(ख) **(अस्तेय)** अर्थात् मन, वचन, कर्म से चोरी त्याग ।

- (सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास)

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ॥३८॥

सूत्रार्थ : ब्रह्मचर्य की सिद्धि होने पर बल का लाभ होता है ॥३८॥

व्यासभाष्यम् : यस्य लाभादप्रतिघान्गुणानुत्कर्षयति । सिद्धश्च विनेयेषु ज्ञानमाधातुं समर्थो भवतीति ॥३८॥

व्यास-भाष्य-पदार्थ : (यस्य लाभादप्रतिघान्गुणानुत्कर्षयति) जिसके लाभ से गुणों से अप्रतिघात होना रूप शक्ति बढ़ती है अर्थात् तीन गुण योगी को बाधा न कर सके ऐसी शक्ति बढ़ती है । **(सिद्धश्च विनेयेषु ज्ञानमाधातुं समर्थो भवतीति)** विनय करने वाले जिज्ञासुओं में ज्ञान प्रदान करने को समर्थ होता है, यह सिद्धि होती है ॥३८॥

भोज-वृत्ति : यः किल ब्रह्मचर्यमभ्यस्यति तस्य तत्प्रकर्षान्निरतिशयं वीर्यं सामर्थ्यमाविर्भवति । वीर्यनिरोधो हि ब्रह्मचर्यं तस्य प्रकर्षाच्छरीरेन्द्रियमनःसु वीर्यं प्रकर्षमागच्छति ॥३८॥ अपरिग्रहाभ्यासस्य फलमाह-

भोज-वृत्ति-पदार्थ : (यः किल ब्रह्मचर्यमभ्यस्यति) निश्चय जो योगी ब्रह्मचर्य का अभ्यास करता है **(तस्य तत्प्रकर्षान्निरतिशयं वीर्यं सामर्थ्यमाविर्भवति)** उसको उस अभ्यास के बढ़ने से निरतिशय बल अर्थात् सामर्थ्य का आविर्भाव होता है । **(वीर्यनिरोधो हि ब्रह्मचर्यं)** वीर्य का रोकना ही ब्रह्मचर्य है **(तस्य प्रकर्षाच्छरीरेन्द्रियमनःसु वीर्यं प्रकर्षमागच्छति)** उस योगी के वीर्य बढ़ने से शरीर इन्द्रिय और मन अधिक बल को प्राप्त हो जाते हैं । अर्थात् उसका शारीरिकबल और इन्द्रियबल तो बढ़ता ही है, परन्तु उसकी विचार शक्ति भी जिसके बिना योगी का किञ्चित् भी कार्य सिद्ध नहीं हो सकता अर्थात् योगमार्ग में कुछ भी नहीं कर सकता, वह भी शक्ति बढ़ जाती है, इसलिये योगी को अपनी सफलता के लिये इस की अति रक्षा करनी चाहिये ॥३८॥

(अपरिग्रहाभ्यासस्य फलमाह) अपरिग्रह के अभ्यास का फल आगे कहते हैं ।

ऋषिदयानन्द कृत व्याख्या -

(ब्रह्मचर्यप्रति०) ब्रह्मचर्य सेवन से यह बात होती है कि जब मनुष्य बाल्यावस्था में विवाह न करे, उपस्थेन्द्रिय का संयम रखे, वेदादि शास्त्रों को पढ़ता पढ़ाता रहे, विवाह के पीछे भी ऋतुगामी बना रहे और परस्त्री-गमन आदि व्यभिचार को मन, कर्म, वचन से त्याग देवें, तब दो प्रकार का वीर्य अर्थात् बल बढ़ता है - एक शरीर का, दूसरा बुद्धि का। उसके बढ़ने से मनुष्य अत्यन्त आनन्द में रहता है ॥ पाद २, सूत्र ३८ ॥ - (ऋ० भूमिका, उपासना)

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथंतासंबोधः ॥३९॥

सूत्रार्थ : अपरिग्रह की दृढ़ स्थिति होने पर जन्म किस प्रकार का है यह बोध हो जाता है ॥३९॥

व्यासभाष्यम् : अस्य भवति। कोऽहमासं कथमहमासं किं-स्विदिदं कथंस्विदिदं के वा भविष्यामः कथं वा भविष्याम इत्येवमस्य पूर्वान्तपरान्तमध्येष्वात्मभावजिज्ञासा स्वरूपेणोपावर्तते। एता यमस्थैर्ये सिद्धयः ॥३९॥ नियमेषु वक्ष्यामः -

व्यास-भाष्य-पदार्थ : (**अस्य भवति**) यह इस योगी को बोध होता है। (**कोऽहमासम्**) मैं कौन हूँ ? (**कथमहमासम्**) किस प्रकार मैं हूँ ? (**किंस्विदिदम्**) यह जन्म क्या है ? (**कथं स्विदिदम्**) किस प्रकार यह हुआ है ? (**के वा भविष्यामः**) क्या आगे होंगे ? (**कथं वा भविष्यामः**) अथवा किस प्रकार के होंगे ? (**इत्येवमस्य पूर्वान्तपरान्त मध्येष्वात्मभावजिज्ञासा स्वरूपेणोपावर्तते**) इस प्रकार इसके चित्त में भूत, भविष्यत, वर्तमान तीनों काल सम्बन्धी आत्म स्वरूप की जिज्ञासा स्वभाव से ही वर्तती है सो निवृत्त हो जाती है (**एता यमस्थैर्ये सिद्धयः**) यमों के दृढ़ होने पर यह सिद्धियाँ होती हैं ॥३९॥

(**नियमेषु वक्ष्यामः**) नियमों में आगे कहते हैं -

भोज-वृत्ति : कथमित्यस्यभावः कथंता जन्मनः कथंता जन्मकथंता तस्याः सम्बोधः सम्यग्ज्ञानं जन्मान्तरे कोऽहमासं कीदृशः किंकार्यकारीति जिज्ञासायां सर्वमेव सम्यग्जानातीत्यर्थः । न केवलं भोगसाधनपरिग्रह एव परिग्रहो यावदात्मनः शरीरपरिग्रहोऽपि परिग्रहः, भोगसाधनत्वाच्छरीरस्य तस्मिन्सति रागानुबन्धाद्बहिर्मुखायामेव प्रवृत्तौ न तात्त्विकज्ञानप्रादुर्भावः । यदा पुनः शरीरादिपरिग्रहनैरपेक्ष्येण माध्यस्थ्यमवलम्बते तदा मध्यस्थस्य रागादित्यागात्सम्यग्ज्ञानहेतुर्भवत्येव पूर्वापरजन्मसंबोधः ॥३९॥ उक्ता यमानां सिद्धयः । अथ नियमानामाह -

भोज-वृत्ति-पदार्थ : (कथमित्यस्य भावः कथन्ता) कथम् इस शब्द का अर्थ है प्रकार । कथम् के भाव को कथन्ता कहते हैं, अर्थात् प्रकारता । **(जन्मनः कथन्ता जन्मकथन्ता)** जन्म की कथन्ता जन्मकथन्ता (जन्म की प्रकारता) है । **(तस्याः सम्बोधः सम्यग्ज्ञानम्)** उसका ज्ञान किस प्रकार हो ? (तो उसका उत्तर है कि) **(जन्मान्तरे)** जन्मान्तरों में । **(कोऽहमासम्)** मैं कौन हूँ ? **(कीदृशः)** किस समान ? **(किं कार्यकारि)** क्या कार्य करने वाला ? **(इति जिज्ञासायाम्)** इस जिज्ञासा में **(सर्वमेव सम्यग्जानातीत्यर्थः)** सब को यथार्थ जानता है, यह अर्थ है । **(न केवलं भोगसाधनपरिग्रहः एव परिग्रहः)** केवल भोग साधन रूप लोभ ही लोभ नहीं है **(यावदात्मनः शरीरपरिग्रहोऽपि परिग्रहः)** जब तक अपने शरीर का लोभ है वह भी लोभ ही है, **(भोगसाधनत्वाच्छरीरस्य । तस्मिन्सति)** शरीर भोग साधन होने से उसमें रहते हुए **(रागानुबन्धाद्बहिर्मुखायामेव प्रवृत्तौ)** राग में बंधा हुआ होने से बहिर्मुखरूपता से प्रवृत्त हुए में **(न तात्त्विकज्ञानप्रादुर्भावः)** यथार्थ ज्ञान की उत्पत्ति नहीं होती । **(यदा पुनः शरीरादिपरिग्रहनैरपेक्ष्येण**

माध्यस्थ्यमवलम्बते) जब फिर शरीरादि लोभ की अपेक्षा रहितता से अधर लटकी हुई वस्तु के समान मध्य में लटकता है अर्थात् शरीर की किञ्चित् भी परवाह न रखता हुआ ईश्वराश्रय पर इस के पालन की चिन्ता छोड़ देता है, इस समान कि चाहे अभी नष्ट हो जावे या युगान्तरों विद्यमान रहे वा कितने ही दु:खो का सामना हो वा सर्व सुख हो यह सर्वभाव जब छोड़ देता है, (**तदा मध्यस्थस्य रागादित्यागात्**) तब ऐसे मध्यस्थ पुरुष को रागादि के त्याग से (**सम्यग्ज्ञानहेतुर्भवत्येव पूर्वापर-जन्मसम्बोधः**) यथार्थ ज्ञान का कारण, पूर्वापर जन्मों का ज्ञान होता है ॥३९॥

(**उक्ता यमानां सिद्धयः**) यमों की सिद्धि कही गई । (**अथ नियमानामाह**) अब नियमों को कहते हैं -

ऋषिदयानन्द कृत व्याख्या -

(**अपरिग्रहस्थै०**) अपरिग्रह का फल यह है कि जब मनुष्य विषयासक्ति से बच कर सर्वथा जितेन्द्रिय रहता है, तब मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ और मुझ को क्या करना चाहिये अर्थात् क्या काम करने से मेरा कल्याण होगा, इत्यादि शुभगुणों का विचार उसके मन में स्थिर होता है ॥ पाद २, सूत्र ३९ ॥ - (ऋ० भूमिका, उपासना)

शौचात्स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः ॥४०॥

सूत्रार्थ : शौच के सिद्ध होने से अपने अङ्गो की निन्दा और दूसरों से असंसर्ग होता है ॥४०॥

व्यासभाष्यम् : स्वाङ्गे जुगुप्सायां शौचमारभमाणः कायावद्यदर्शी कायानभिष्वङ्गी यतिर्भवति । किं च परैरसंसर्गः कायस्व-भावावलोकी स्वमपि कायं जिहासुर्मृज्जलादिभिराक्षालयन्नपि काय-शुद्धिमपश्यन्कथं परकायैरत्यन्तमेवाप्रयतैः संसृज्यते ॥४०॥ किं च -

व्यास-भाष्य-पदार्थ : (**स्वाङ्गे जुगुप्सायाम्**) अपने अङ्गों में घृणा होने पर (**शौचमारभमाणः**) शौच को आरम्भ करता हुआ (**कायावद्यदर्शी**) शरीर वाले अर्थात् शरीर के स्वामी जीवात्मा को साक्षात् देखने वाला (**कायानभिष्वङ्गी यतिर्भवति**) शरीर में ममता न रखने वाला योगी होता है । (**किं च परैरसंसर्गः**) और यह भी कि दूसरों से संसर्ग नहीं करता (**कायस्वभावावलोकी**) काया के स्वभाव को जानने वाला (**स्वमपि कायं जिहासुः**) अपनी काया के त्याग की भी इच्छा करने वाला (**मृज्जलादिभिराक्षालयन्नपि**) मिट्टी जलादि से धोता हुआ भी (**कायशुद्धिमपश्यन्**) शरीर की शुद्धि को न देखता हुआ (**कथं परकायैरत्यन्तमेवाप्रयतैः संसृज्यते**) शुद्धि के लिये जो यत्न न करते हों, ऐसे दूसरों के शरीरों से किस प्रकार संसर्ग करें ॥४०॥

(**किं च**) और क्या -

भोज-वृत्ति : यः शौचं भावयति तस्य स्वाङ्गेष्वपि कारण-स्वरूपपर्यालोचनद्वारेण जुगुप्सा घृणा समुपजायतेऽशुचिरयं कायो नात्राऽऽग्रहः कार्य इति अमुनैव हेतुना परेरन्यैश्च कायवद्भिरसंसर्गः संसर्गाभावः संसर्गपरिवर्जनमित्यर्थः । यः किल स्वमेव कायं जुगुप्सते तत्तदवद्यदर्शनात्स कथं परकीयैस्तथाभूतैः कायैः संसर्गमनुभवति ॥४०॥

भोज-वृत्ति-पदार्थ : (**यः शौचं भावयति**) जो पुरुष शौच को पालन करता है (**तस्य स्वाङ्गेष्वपि**) उसका अपने अङ्गो मे भी (**कारणस्वरूपपर्यालोचनद्वारेण**) कारण स्वरूप में दृष्टि करने से (**जुगुप्सा घृणा समुपजायते**) निन्दा अर्थात् घृणा उत्पन्न होती है (**अशुचिरयं कायो नात्राऽऽग्रहः कार्य इतिः**) यह शरीर अपवित्र है इस में आग्रह नहीं करना चाहिये । (**अमुनैव हेतुना परैरन्यैश्च कायवद्भिर-**

संसर्गः) इस कारण से दूसरों के साथ अपने शरीर के समान असंसर्ग करता है (**संसर्गाभावः संसर्गपरिवर्जनमित्यर्थः**) ससर्ग का अभाव संसर्ग का त्याग करना यह अर्थ है । (**यः किल स्वमेव कायं जुगुप्सते**) निश्चय जो अपने ही शरीर की निन्दा करता है (**तत्तदवद्यदर्शनात्स कथं परकीयैस्तथाभूतैः कायैः संसर्गमनुभवति**) वह उस शरीर वाले जीवात्मा के देखने से किस प्रकार दूसरों के वैसे ही शरीरों से संसर्ग करता है, अर्थात् नहीं करता है ॥४०॥

(**शौचस्यैव फलान्तरमाह**) शौच का ही दूसरा फल कहते हैं -

ऋषिदयानन्द कृत व्याख्या -

परन्तु यमों का नियम सहकारी कारण है, जो कि उपासना का दूसरा अङ्ग कहाता है, और जिसका साधन करने से उपासक लोगों का अत्यन्त सहाय है, सो भी पाँच प्रकार का है । उनमें से प्रथम शौच का फल लिखा जाता है - (**शौचात्०**) पूर्वोक्त दो प्रकार के शौच करने से भी जब अपना शरीर और उसके सब अवयव बाहर-भीतर से मलिन ही रहते हैं, तब औरों के शरीर की भी परीक्षा होती है कि सब के शरीर मल आदि से भरे हुए हैं । इस ज्ञान से वह योगी दूसरे से अपना शरीर मिलाने में घृणा अर्थात् संकोच करके सदा अलग रहता है ॥ पाद २, सूत्र ४० ॥ - (ऋ० भूमिका, उपासना)

सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शन योग्यत्वानि च ॥४१॥

सूत्रार्थ : और बुद्धि की शुद्धि, मन की प्रसन्नता, एकाग्रता, इन्द्रियों का जय और आत्मदर्शन की योग्यता होती है ॥४१॥

व्यासभाष्यम् : भवन्तीति वाक्यशेषः । शुचेः सत्त्वशुद्धिस्ततः

सौमनस्यं ततः ऐकाग्र्यं तत इन्द्रियजयस्ततश्चाऽऽत्मदर्शनयोग्यत्वं बुद्धिसत्त्वस्य भवतीत्येतच्छौचस्थैर्यादधिगम्यत इति ॥४१॥

व्यास-भाष्य-पदार्थ : (**भवन्तीति वाक्यशेषः**) होती हैं यह वाक्यशेष है । (**शुचेः सत्त्वशुद्धिः**) शौच के होने पर बुद्धि की शुद्धि होती है (**ततः सौमनस्यं**) उससे मन की प्रसन्नता (**तत ऐकाग्र्यं**) उससे एकाग्रता (**तत इन्द्रियजयः**) उससे इन्द्रियों का जय होना (**ततश्चात्मदर्शनयोग्यत्वं**) उससे आत्मदर्शन की योग्यता (**बुद्धिसत्त्वस्य भवतीति**) बुद्धि में होती है (**एतत् शौचस्थैर्यादधिगम्यत इति**) यह सब फल इस शौच की स्थिरता से प्राप्त होता है ॥४१॥

भोज-वृत्ति : भवन्तीति वाक्यशेषः । सत्त्वं प्रकाशसुखाद्यात्मकं तस्य शुद्धीरजस्तमोभ्यामनभिभवः सौमनस्यं खेदाननुभवेन मानसी प्रीतिः । एकाग्रता नियतेन्द्रियविषये चेतसः स्थैर्यम् । इन्द्रियजयो विषयपराङ्मुखाणामिन्द्रियाणामात्मनि अवस्थानम् । आत्मदर्शने विवेकख्यातिरूपे चित्तस्य योग्यत्वं समर्थत्वम् । शौचभ्यासवत एते सत्त्वशुद्ध्यादयः क्रमेण प्रादुर्भवन्ति । तथा हि - सत्त्वशुद्धेः सौमनस्यं सौमनस्यादैकाग्र्यमैकाग्र्यादिन्द्रियजय इन्द्रियजयादात्मदर्शनयोग्यतेति ॥४१॥ संतोषाभ्यासवतः फलमाह -

भोज-वृत्ति-पदार्थ : (**भवन्तीति वाक्यशेषः**) होती हैं, यह वाक्य शेष है । (**सत्त्वं प्रकाशसुखाद्यात्मकं**) बुद्धि प्रकाश सुखादि रूप (**तस्य शुद्धी रजस्तमोभ्यामनभिभवः**) रजोगुण और तमोगुण से उसका तिरस्कृत न होना उसकी शुद्धि है । (**सौमनस्यं खेदाननुभवेन मानसी प्रीतिः**) खेद रहित मन की प्रीति सौमनस्य कहलाती है । (**एकाग्रता नियतेन्द्रियविषये चेतसः स्थैर्यम्**) एक इन्द्रिय के विषय में चित्त का ठहराव एकाग्रता है । (**इन्द्रियजयो विषयपराङ्मुखाणामिन्द्रियाणामात्मनि**

अवस्थानम्) विषयों के सन्मुख हुई इन्द्रियों को आत्मा में ठहराना इन्द्रियजय कहलाता है । (**आत्मदर्शने विवेकख्यातिरूपे चित्तस्य योग्यत्वं समर्थत्वम्**) विवेकख्याति रूप आत्मदर्शन में चित्त की योग्यता समर्थता । (**शौचाभ्यासवत एते सत्त्वशुद्ध्यादयः क्रमेण प्रादुर्भवन्ति**) शौच का अभ्यास करने वाले को यह बुद्धि की शुद्धि आदि क्रम से उत्पन्न होती हैं । (**तथा हि सत्त्वशुद्धेः सौमनस्यं**) इस प्रकार की बुद्धि की शुद्धि होने पर मन की प्रसन्नता (**सौमनस्यादैकाग्र्यम्**) मन की प्रसन्नता से एकाग्रता (**ऐकाग्र्यादिन्द्रियजयः**) एकाग्रता से इन्द्रियों का जय होना (**इन्द्रियजयादात्मदर्शनयोग्यतेति**) इन्द्रियजय से आत्मदर्शन की योग्यता होती है ॥४१॥

(**संतोषाभ्यासवतः फलमाह**) संतोष के अभ्यास करने वाले का फल आगे कहते हैं -

ऋषिदयानन्द कृत व्याख्या -

और उसका फल यह है कि (**किञ्च०**) अर्थात् शौच से अन्तःकरण की शुद्धि, मनकी प्रसन्नता और एकाग्रता, इन्द्रियों का जय तथा आत्मा के देखने अर्थात् जानने की योग्यता प्राप्त होती है ॥ पाद २, सूत्र ४१ ॥ - (ऋ० भूमिका, उपासना)

संतोषादनुत्तमः सुखलाभः ॥४२॥

सूत्रार्थ : संतोष से अनुत्तम सुख का लाभ होता है ॥४२॥

व्यासभाष्यम् : तथा चोक्तम् -

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् ।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम् ॥इति॥४१॥

व्यास-भाष्य-पदार्थ : (**तथा चोक्तम्**) ऐसा ही कहा है -

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् ।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम् ।इति॥४१॥

जो संसार में भोगों का सुख है और जो दिव्य महान् सुख है । तृष्णाओं के नाश होने पर जो सुख होता, उसके सोलहवें हिस्से के भी बराबर वह दोनों नहीं हैं ॥४२॥

भोज-वृत्ति : संतोषप्रकर्षेण योगिनस्तथाविधमान्तरं सुखमाविर्भवति । यस्य बाह्यं सुखं लेशेनापि न समम् ॥४२॥ तपसः फलमाह-

भोज-वृत्ति-पदार्थ : (संतोषप्रकर्षेण योगिनस्तथाविधमान्तरं सुखमाविर्भवति) संतोष के बढ़ने से योगी को ऐसा आन्तरिक सुख प्राप्त होता है । **(यस्य बाह्यं सुखं लेशेनापि न समम्)** बाह्य सुख जिसके एक अंश समान भी नहीं है ॥४२॥

(तपसः फलमाह) तप का फल कहते हैं -

ऋषिदयानन्द कृत व्याख्या -

तदनन्तर **(सन्तोषाद०)** अर्थात् पूर्वोक्त सन्तोष से जो सुख मिलता है, वह सबसे उत्तम है, और उसीको मोक्ष सुख कहते हैं ॥ पाद २, सूत्र ४२ ॥ - (ऋ० भूमिका, उपासना)

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ॥४३॥

सूत्रार्थ : तप के पूर्ण होने पर अशुद्धि के नाश होने से शरीर इन्द्रियों की सिद्धि होती है ॥४३॥

व्यासभाष्यम् : निर्वर्त्यमानमेव तपो हिनस्त्यशुद्ध्यावरणमलं तदावरणमलापगमात्कायसिद्धिरणिमाद्या । तथेन्द्रियसिद्धिर्दूराच्छ्रवणदर्शनाद्येति ॥४३॥

व्यास-भाष्य-पदार्थ : (निर्वर्त्यमानमेव तपः) तप को पालन करते हुए **(हिनस्त्यशुद्ध्यावरणमलं)** अशुद्धि जो आवरणमल रूप है इसको नाश करता है **(तदावरणमलापगमात्कायसिद्धिरणिमाद्या)** उस आवरणमल के नष्ट होने से शरीर की सिद्धि=अणिमादि की प्राप्ति होती है । **(तथेन्द्रियसिद्धिर्दूराच्छ्रवणदर्शनाद्येति)** उसी प्रकार इन्द्रियों की सिद्धि दूर से सुनना और देखनादि होती है ॥४३॥

भोज-वृत्ति : तपः समभ्यस्यमानं चेतसः क्लेशादिलक्षणाशुद्धिक्षयद्वारेण कायेन्द्रियाणां सिद्धिमुत्कर्षमादधाति । अयमर्थः - चान्द्रायणादिना चित्तक्लेशक्षयस्तत्क्षयादिन्द्रियाणां सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टदर्शनादिसामर्थ्यमाविर्भवति । कायस्य यथेच्छमणुत्वमहत्त्वादीनि ॥४३॥ स्वाध्यायस्य फलमाह -

भोज-वृत्ति-पदार्थ : (तपः समभ्यस्यमानं) तप के अभ्यास करते हुए **(चेतसः क्लेशादिलक्षणाशुद्धिक्षयद्वारेण)** चित्त की क्लेशरूपी अशुद्धि के नाश द्वारा **(कायेन्द्रियाणां सिद्धिमुत्कर्षमादधाति)** शरीर और इन्द्रियाँ बड़ी सिद्धि को धारण करते हैं । **(अयमर्थः)** यह अर्थ है - **(चान्द्रायणादिना चित्तक्लेशक्षयस्तत्क्षयादिन्द्रियाणां)** चान्द्रायणादि के द्वारा चित्त के क्लेशों का नाश होता है उसके क्षय से इन्द्रियों का **(सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टदर्शनादिसामर्थ्यमाविर्भवति)** सूक्ष्मआवृत्त और दूरदर्शनादि सामर्थ्यों का आविर्भाव होता है **(कायस्य यथेच्छमणुत्वमहत्त्वादीनि)** और शरीर का इच्छापूर्वक सूक्ष्म-महानादि कर लेना भी योगी को सिद्ध हो जाता है ॥४३॥

(स्वाध्यायस्य फलमाह) स्वाध्याय का फल कहते हैं -

ऋषिदयानन्द कृत व्याख्या -

(कायेन्द्रिय०) अर्थात् पूर्वोक्त तप से उन के शरीर और इन्द्रियाँ

अशुद्धि के क्षय से दृढ़ होके सदा रोग रहित रहते हैं ॥ पाद २, सूत्र ४३ ॥ - (ऋ० भूमिका, उपासना)

स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः ॥४४॥

सूत्रार्थ : स्वाध्याय के सिद्ध होने से इष्ट देव परमात्मा के साथ योग होता है ॥४४॥

व्यासभाष्यम् : देवा ऋषयः सिद्धाश्च स्वाध्यायशीलस्य दर्शनं गच्छन्ति, कार्ये चास्य वर्तन्त इति ॥४४॥

व्यास-भाष्य-पदार्थ : (देवा ऋषयः सिद्धाश्च स्वाध्याय-शीलस्य दर्शनं गच्छन्ति) स्वाध्यायशील पुरुष को देवता ऋषियों के दर्शन प्राप्त होते हैं, **(कार्ये चास्य वर्तन्त इति)** और इस योगी के कार्य में प्रवृत्त होते हैं ॥४३॥

विशेष : यह भाष्य सूत्र के शब्दों से नहीं निकलता और वैदिक सिद्धान्त से भी विरुद्ध है और भोज वृत्ति भी इसके विरुद्ध है, परन्तु वह यथार्थ है और वैदिक सिद्धान्त के अनुकूल है। इससे मालूम होता है कि किसी पौराणिकमतावलम्बी पुरुष ने महाराजा भोज के पश्चात् इसको बदल दिया है, जिज्ञासुओं को चाहिये कि भोज वृत्ति के अर्थ को स्वीकार करें वह फलदायक है ॥४४॥

भोज-वृत्ति : अभिप्रेतमन्त्रजपादिलक्षणे स्वाध्याये प्रकृष्य-माणे योगिन इष्टयाऽभिप्रेतया देवतया सम्प्रयोगो भवति। सा देवता प्रत्यक्षीभवतीत्यर्थः ॥४४॥ ईश्वरप्रणिधानस्य फलमाह -

भोज-वृत्ति-पदार्थ : (अभिप्रेतमन्त्रजपादिलक्षणे स्वाध्याये प्रकृष्यमाणे योगिनः) इष्ट मन्त्र के जप रूप स्वाध्याय के पूर्ण होने पर योगी को **(इष्टयाऽभिप्रेतया देवतया सम्प्रयोगो भवति)** इष्ट देवता का

योग होता है । **(सा देवता प्रत्यक्षीभवतीत्यर्थः)** अर्थात् वह देवता प्रत्यक्ष होता है, यह अर्थ है अर्थात् ओङ्कार पूर्वक गायत्री आदि मन्त्र के द्वारा इष्ट देवता परमात्मा का साक्षात् दर्शन होता है यह अर्थ है ॥४४॥

(ईश्वरप्रणिधानस्य फलमाह) ईश्वरप्रणिधान का फल आगे कहते हैं -

ऋषिदयानन्द कृत व्याख्या -

तप **(स्वाध्याय०)** पूर्वोक्त स्वाध्याय से इष्ट देवता अर्थात् परमात्मा के साथ सम्प्रयोग अर्थात् साम्य होता है । फिर परमेश्वर के अनुग्रह का सहाय, अपने आत्मा की शुद्धि, सत्याचरण पुरुषार्थ और प्रेम के सम्प्रयोग से जीव शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त होता है ॥ पाद २, सूत्र ४४ ॥

- (ऋ० भूमिका, उपासना)

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ॥४५॥

सूत्रार्थ : ईश्वरप्रणिधान के पूर्ण होने पर समाधि की सिद्धि होती है ॥४५॥

व्यासभाष्यम् : ईश्वरार्पितसर्वभावस्य समाधिसिद्धिर्यया सर्वमीप्सितमवितथं जानाति देशान्तरे देहान्तरे कालान्तरे च । ततोऽस्य प्रज्ञा यथाभूतं प्रजानातीति ॥४५॥

उक्ताः सह सिद्धिभिर्यमनियमाः । आसनादीनि वक्ष्यामः । तत्र ।

व्यास-भाष्य-पदार्थ : (ईश्वरार्पितसर्वभावस्य समाधिसिद्धिः) ईश्वर के अर्पण किये हैं सर्वभाव जिसने उस योगी को समाधि की सिद्धि होती है **(यया सर्वमीप्सितमवितथं जानाति)** जिससे सब वस्तु को यथार्थ जानता है **(देशान्तरे देहान्तरे कालान्तरे च)** सर्वदेशों में-सर्वदेहों में-सर्वकालों में **(ततोऽस्य प्रज्ञा यथाभूतं प्रजानातीति)** उससे इसकी बुद्धि जैसा जो कुछ है सब को जानती है ॥४५॥

(**उक्ताः सह सिद्धिभिर्यमनियमाः**) यम नियमों को सिद्धि सहित कहा गया (**आसनादीनि वक्ष्यामः**) आसन आदि को आगे कहेंगे (**तत्र**) उनमें -

भोज-वृत्ति : ईश्वरे यत्प्रणिधानं भक्तिविशेषस्तस्मात्समाधेरुक्तलक्षणस्याऽऽविर्भावो भवति । यस्मात्स भगवानीश्वरः प्रसन्नः सन्नन्तरायरूपान्क्लेशान्परिहृत्य समाधिं सम्बोधयति ॥४५॥ यमनियमानुक्त्वाऽऽसनमाह -

भोज-वृत्ति-पदार्थ : (ईश्वरे यत्प्रणिधानं भक्तिविशेषः) जो प्रणिधान कहलाता है उसका अर्थ ईश्वर में भक्ति विशेष अर्थात् प्रेम होने का है **(तस्मात् समाधेरुक्तलक्षणस्याऽऽविर्भावो भवति)** उस भक्ति विशेष के कारण ऊपर के सूत्र में कही हुई समाधि की प्रकटता होती है । **(यस्मात् स भगवान् ईश्वरः प्रसन्नः सन्नन्तरायरूपान्क्लेशान्परिहृत्य समाधिं सम्बोधयति)** क्योंकि उससे वह भगवान् ईश्वर प्रसन्न होकर विघ्नरूप क्लेशों को नष्ट करके समाधि के विषय अपने स्वरूप को जनाता है ॥४५॥

(यमनियमानुक्त्वाऽऽसनमाह) यम नियमों को कहकर आगे आसन को कहते हैं -

ऋषिदयानन्द कृत व्याख्या -

तथा (**समाधि०**) पूर्वोक्त प्रणिधान से उपासक मनुष्य सुगमता से समाधि को प्राप्त होता है ॥ पाद २, सूत्र ४५ ॥ - (ऋ० भूमिका, उपासना)

स्थिरसुखमासनम् ॥४६॥

सूत्रार्थ : जिसमें स्थिरता हो और सुख हो वही आसन है ॥४६॥

व्यासभाष्यम् : तद्यथा पद्मासनं वीरासनं भद्रासनं स्वस्तिकं दण्डासनं सोपाश्रयं पर्यङ्कं क्रौञ्चनिषदनं हस्तिनिषदनमुष्ट्रनिषदनं समसंस्थानं स्थिरसुखं यथासुखं चेत्येवमादीनि ॥४६॥

व्यास-भाष्य-पदार्थ : (तद्यथा) उस विषय में जैसे **(पद्मासनं वीरासनं भद्रासनमिति०)** पद्मासन, वीरासन, भद्रासनादि जो जिस को इष्ट हो वही करे परन्तु जिसमें शरीर कम्पनादि न हो और सुख हो यह विचार रक्खे ॥४६॥

भोज-वृत्ति : आस्यतेऽनेनेत्यासनं पद्मासनदण्डासनस्वस्तिकासनादि । तद्यदा स्थिरं निष्कम्पं सुखमनुद्वेजनीयं च भवति तदा योगाङ्गतां भजते ॥४६॥ तस्यैव स्थिरसुखत्वप्राप्त्यर्थमुपायमाह -

भोज-वृत्ति-पदार्थ : (आस्यतेऽनेनेत्यासनं) जिसके द्वारा बैठा जाये वह आसन कहलाता है **(पद्मासनदण्डासनस्वस्तिकासनादि)** वह पद्मासन, दण्डासन, स्वस्तिकासनादि हैं । **(तद्यदा स्थिरं निष्कम्पं सुखमनुद्वेजनीयं च भवति)** वह आसन जब स्थिर अर्थात् निष्कम्प सुखरूप और जो व्याकुलता करने योग्य न हो, ऐसा होता है **(तदा योगाङ्गतां भजते)** तब योगाङ्गता को प्राप्त होता है ॥४६॥

(तस्यैव स्थिरसुखस्वप्राप्त्यर्थमुपायमाह) उस स्थिरता और सुख की प्राप्ति के लिये उपाय कहते हैं -

ऋषिदयानन्द कृत व्याख्या -

(तत्र स्थिर०) अर्थात् जिसमें सुखपूर्वक शरीर और आत्मा स्थिर हों, उसको आसन कहते हैं अथवा जैसी रुचि हो वैसा आसन करें ॥ पाद २, सूत्र ॥४६॥ - (ऋ० भूमिका, उपासना)

प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम् ॥४७॥

सूत्रार्थ : प्रयत्न की शिथिलता और अनन्त समापत्तियों द्वारा

आसन स्थिर और सुखकारक होता है। देह कम्पनादि न होना प्रयत्न की शिथिलता का अर्थ है और अनन्तविध आसनों के स्वरूप को विचार कर यथा अवसर लाभकारी आसन को स्वीकार करना अनन्तसमापत्ति का अभिप्राय है ॥४७॥

व्यासभाष्यम् : भवतीति वाक्यशेषः । प्रयत्नोपरमात्सिध्यत्यासनं येन नाङ्गमेजयो भवति । अनन्ते वा समापन्नं चित्तमासनं निर्वर्तयतीति ॥४७॥

व्यास-भाष्य-पदार्थ : (भवतीति वाक्यशेषः) सूत्र में होता हे, यह वाक्यशेष है। **(प्रयत्नोपरमात्सिध्यत्यासनं)** प्रयत्न के उपराम होने से आसन सिद्ध होता है **(येन नाङ्गमेजयो भवति)** जिससे अङ्गकम्पन नहीं होता। **(अनन्ते वा समापन्नं चित्तमासनं निर्वर्तयतीति)** अनन्तविध आसनों में लगाया हुआ चित्त आसन को सिद्ध करता है ॥४७॥

भोज-वृत्ति : तदासनं प्रयत्नशैथिल्येनाऽऽनन्त्यसमापत्त्या च स्थिरं सुखं भवतीति सम्बन्धः । यदा यदाऽऽसनं बध्नामीतीच्छां करोति प्रयत्नशैथिल्येऽपि अक्लेशेनैव तदा तदाऽऽसनं सम्पद्यते । यदा चाऽऽकाशादिगत आनन्त्ये चेतसः समापत्तिः क्रियतेऽव्यवधानेन तादात्म्यमापद्यते तदा देहाहंकाराभावान्नाऽऽसनं दुःखजनकं भवति । अस्मिंश्चाऽऽसनजये सति समाध्यन्तरायभूता न प्रभवन्ति अङ्गमेजयत्वादयः ॥४७॥ तस्यैवानुनिष्पादितं फलमाह -

भोज-वृत्ति-पदार्थ : (तदासनं प्रयत्न शैथिल्येनाऽऽनन्त्यसमापत्त्या च स्थिरं सुखं भवतीति सम्बन्धः) वह आसन प्रयत्न की शिथिलता और अनन्तसमापत्तियों से स्थिर और सुखदाई होता है, यह सम्बन्ध है। **(यदाऽऽसनं बध्नामीतीच्छां करोति)** जब जब मैं आसन को बांधूं यह इच्छा करता है **(प्रयत्नशैथिल्येऽपि)** प्रयत्न की शिथिलता

होने पर ही (**अक्लेशेनैव तदा तदाऽऽसनं सम्पद्यते**) क्लेश के बिना ही तब तब आसन सिद्ध होता है (**यदा चाऽऽकाशादिगत आनन्त्ये चेतसः समापत्तिः क्रियतेऽव्यवधानेन**) और जब अनन्त आकाश में चित्त की व्यवधान रहित अर्थात् दूसरा ज्ञान बीच में नहीं आवे इस प्रकार समापत्ति की जाती है अर्थात् निराकार स्वरूप को ग्रहण किया जाता है (**तादात्म्यमापद्यते**) तद्रूपता को प्राप्त होता है (**तदा देहाहंकाराभावान्नाऽऽसनं दुःखजनकं भवति**) तब देह अभिमान का अभाव हो जाने से आसन दुःख का उत्पादक नहीं होता । (**अस्मिंश्चाऽऽसनजये सति**) इस आसन के जय होने पर (**समाध्यन्तरायभूता न प्रभवन्ति अङ्गमेजयत्वादयः**) देह कम्पनादि समाधि के विघ्न भी नहीं उत्पन्न होते ॥४७॥

(**तस्यैवानुनिष्पादितं फलमाह**) उससे ही सम्पादन किया हुआ फल कहते हैं -

ततो द्वन्द्वानभिघातः ॥४८॥

सूत्रार्थ : उस आसन सिद्धि से योगी को द्वन्द्व शीतोष्णादि नहीं सताते ॥४८॥

व्यासभाष्यम् : शीतोष्णादिभिर्द्वन्द्वैरासनजयान्नाभिभूयते ॥४८॥

व्यास-भाष्य-पदार्थ : (शीतोष्णादिभिर्द्वन्द्वैरासनजयान्नाभिभूयते) आसनजय होने के कारण शीतोष्णादि द्वन्द्वो से योगी बाधा को नहीं प्राप्त होता ॥४८॥

भोज-वृत्ति : तस्मिन्नासनजये सति द्वन्द्वैः शीतोष्णक्षुत्तृष्णादिभिर्योगी नाभिहन्यत इत्यर्थः ॥४८॥ आसनजयानन्तरं प्राणायाममाह -

भोज-वृत्ति-पदार्थ : (तस्मिन्नासनजये सति) उस आसनजय काल में (**द्वन्द्वैः शीतोष्णक्षुत्तृष्णादिभिर्योगी नाभिहन्यत इत्यर्थः**)

शीतोष्ण-क्षुधा-तृषादि द्वन्द्वों से योगी बाधा को प्राप्त नहीं होता यह अर्थ है ॥४८॥

(आसनजयानन्तरं प्राणायाममाह) आसन जय के पश्चात् होनेवाले प्राणायाम को कहते हैं -

ऋषिदयानन्द कृत व्याख्या -

(ततो द्वन्द्वा०) जब आसन दृढ़ होता है, तब उपासना करने में कुछ परिश्रम करना नहीं पड़ता है और न सर्दी, गर्मी अधिक बाधा करती है ॥ पाद २, सूत्र ४८॥ - (ऋ० भूमिका, उपासना)

तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ॥४९॥

सूत्रार्थ : आसन के होते हुए श्वास-प्रश्वास की गति का रोकना प्राणायाम कहलाता है ॥४९॥

व्यासभाष्यम् : सत्यासने बाह्यस्य वायोराचमनं श्वासः, कौष्ठ्यस्य वायोर्निःसारणं प्रश्वासः, तयोर्गतिविच्छेद उभयाभावः प्राणायामः ॥४९॥ स तु -

व्यास-भाष्य-पदार्थ : (सत्यासने बाह्यस्य वायोराचमनं श्वासः) आसन के होते हुए बाहर के वायु को अन्दर खींचना "श्वास" कहलाता है, **(कौष्ठ्यस्यवायोर्निःसारणं प्रश्वासः)** उदर के वायु का बाहर निकालना "प्रश्वास" कहलाता है, **(तयोर्गतिविच्छेद उभयाभावः प्राणायामः)** उन दोनों की गति को रोकना अर्थात् उन दोनों का अभाव "प्राणायाम" कहलाता है ॥४९॥

भोज-वृत्ति : आसनस्थैर्ये सति तन्निमित्तकः प्राणायामलक्षणो योगाङ्गविशेषोऽनुष्ठेयो भवति । कीदृशः ? श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेद-लक्षणः । श्वासप्रश्वासौ निरुक्तौ । तयोस्त्रिधा रेचनस्तम्भनपूरणद्वारेण

बाह्याभ्यन्तरेषु स्थानेषु गतेः प्रवाहस्य विच्छेदो धारणं प्राणायाम उच्यते ॥४९॥ तस्यैव सुखावगमाय विभज्य स्वरूपं कथयति -

भोज-वृत्ति-पदार्थ : (आसनस्थैर्ये सति तन्निमित्तकः प्राणायामलक्षणः) आसन के होते हुए उसके निमित्त से होनेवाले प्राणायामरूप **(योगाङ्गविशेषोऽनुष्ठेयो भवति)** योगाङ्ग विशेष अनुष्ठान करने योग्य होते हैं । **(कीदृशः ?)** किस समान कि ? **(श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदनलक्षणः)** श्वास-प्रश्वास दोनों ऊपर कहे हुए । **(तयोस्त्रिधा रेचनस्तम्भनपूरणद्वारेण)** उन दोनों का तीन प्रकार से रेचक, कुम्भक, पूरक द्वारा **(बाह्याभ्यन्तरेषु स्थानेषु गतेः प्रवाहस्य विच्छेदो धारणं)** बाह्य-आभ्यन्तर दोनों स्थानों में गति का प्रवाह रोकना धारण करना **(प्राणायाम उच्यते)** प्राणायाम कहलाता है ॥४९॥

(तस्यैव सुखावगमाय विभज्य स्वरूपं कथयति) उसके ही सुख पूर्वक प्राप्ति के लिये विभाग करके स्वरूप कथन करते हैं -

ऋषिदयानन्द कृत व्याख्या -

(तस्मिन् सति) जो वायु बाहर से भीतर को आता है उसको श्वास, और जो भीतर से बाहर जाता है, उसको प्रश्वास कहते हैं । उन दोनों के जाने आने को विचार से रोके । नासिका को हाथ से कभी न पकड़े, किन्तु ज्ञान से ही उनको रोकने को प्राणायाम कहते हैं ॥ पाद २, सूत्र ४९॥ - (ऋ० भूमिका, उपासना)

बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसङ्ख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः ॥५०॥

सूत्रार्थ : बाह्य अर्थात् प्रश्वास, उसको रेचक भी कहते हैं । आभ्यन्तर अर्थात् श्वास इसको पूरक भी कहते हैं और दोनों की गति

का अभाव स्तम्भवृत्ति इसे कुम्भक भी कहते हैं । देश-काल-सङ्ख्या के सहित परीक्षा किया हुआ दीर्घ-सूक्ष्म कहलाता है ॥५०॥

व्यासभाष्यम् : यत्र प्रश्वासपूर्वको गत्यभावः स बाह्यः । यत्र श्वासपूर्वको गत्यभावः स आभ्यन्तरः । तृतीय स्तम्भवृत्तिर्यत्रोभयाभावः । सकृत्प्रयत्नाद्भवति । यथा तप्ते न्यस्तमुपले जलं सर्वतः संकोचमापद्यते तथा द्वयोर्युगपद्गत्यभाव । इति त्रयोऽप्येते देशेन परिदृष्टा इयानस्य विषयो देश इति । कालेन परिदृष्टा क्षणानामियत्तावधारणेनावच्छिन्ना इत्यर्थः सङ्ख्याभिः परिदृष्टा एतावद्भिः श्वासप्रश्वासैः प्रथम उद्घातस्तद्व-न्निगृहीतस्यैतावद्भिर्द्वितीय उद्घात एवं तृतीयः । एवं मृदुरेवं मध्य एवं तीव्र सङ्ख्यापरिदृष्टः । स खल्वयमेवमभ्यस्तो दीर्घसूक्ष्मः ॥५०॥

व्यास-भाष्य-पदार्थ : (यत्र प्रश्वासपूर्वको गत्यभावः स बाह्यः) जिसमें श्वास को बाहर निकालकर गति का अभाव किया जाता है वह "बाह्य" कहलाता है। **(यत्र श्वासपूर्वको गत्यभावः स आभ्यन्तरः)** जिसमें श्वास अन्दर खींचकर गति का अभाव होता है वह "आभ्यन्तर" कहलाता है। **(तृतीयः स्तम्भवृत्तिर्यत्रोभयाभावः)** तीसरा "स्तम्भवृत्ति" जिसमें दोनों का अभाव होता है **(सकृत्प्रयत्नाद्भवति)** वह एक साथ प्रयत्न से होता है। **(यथा तप्ते न्यस्तमुपले जलं सर्वतः संकोचमापद्यते)** जैसे तप्त उपले पर डाला हुआ जल एक साथ सूख जाता है **(तथा द्वयोर्युगपद्गत्यभाव इति)** उसी प्रकार श्वास-प्रश्वास दोनों की एक साथ गति का अभाव होता है । **(त्रयोऽप्येते देशेन परिदृष्टा इयानस्य विषयो देश इति)** यह तीनों देश से भी देखे गये हैं इतने देश अर्थात् इतनी दूर तक का वायु खींचा गया। **(कालेन परिदृष्टाः क्षणानामियत्ता-वधारणेनावच्छिन्ना इत्यर्थः)** क्षणों के द्वारा धारण करने से जो क्षणों के बीच में बाधित न हो अर्थात् इतने क्षणमात्र प्राणायाम रोका गया यह

अर्थ है। (**सङ्ख्याभिः परिदृष्टाः**) गणना से भी देखा गया (**एतावद्भिः श्वासप्रश्वासैः प्रथम उद्घातः**) इतने श्वास-प्रश्वास से पहला उद्घात किया (**तद्वन्निगृहीतस्यैतावद्भिर्द्वितीयः**) उसी समान ग्रहण किया हुआ दूसरा (**उद्घातः**) उद्घात किया (**एवं तृतीयः**) इसी प्रकार तीसरा । (**एवं मृदुरेवं मध्य एवं तीव्रः**) इसी प्रकार मन्द-मध्य-तीव्र (**इति सङ्ख्या-परिदृष्टः**) यह सङ्ख्या से देखा हुआ है । (**स खल्वयमेवमभ्यस्तो दीर्घसूक्ष्मः**) निश्चय इस प्रकार यह अभ्यास किया हुआ दीर्घ-सूक्ष्म कहलाता है ॥५०॥

भोज-वृत्ति : बाह्यवृत्तिः श्वासो रेचकः । अन्तर्वृत्तिः प्रश्वासः पूरकः । अन्तस्तम्भवृत्तिः कुम्भकः तस्मिञ्जलमिव कुम्भे निश्चलतया प्राणा अवस्थाप्यन्त इति कुम्भकः । त्रिविधोऽयं प्राणायामो देशेन कालेन सङ्ख्यया चोपलक्षितो यथा - षट्त्रिंशन्मात्रादिप्रमाणः । सङ्ख्ययोपलक्षितो यथा इयतोवारान्कृत एतावद्भिः श्वासप्रश्वासैः प्रथम उद्घातोभवतीति । एतज्ज्ञानाय सङ्ख्याग्रहणमुपात्तम् । उद्घातो नाम नाभिमूलात्प्रेरितस्य वायोः शिरसि अभिहननम् ॥५०॥ त्रीन्प्राणायामा-नभिधाय चतुर्थमभिधातुमाह -

भोज-वृत्ति-पदार्थ : (**बाह्यवृत्तिः श्वासो रेचकः**) बाहर वर्तनेवाला श्वास "रेचक" कहलाता है । (**अन्तर्वृत्तिः प्रश्वासः पूरकः**) अन्दर वर्तनेवाला प्रश्वास "पूरक" कहलाता है । (**अन्तस्तम्भवृत्तिः कुम्भकः**) तीसरा स्तम्भवृत्ति "कुम्भक" कहलाता है। (**तस्मिन् जलमिव कुम्भे निश्चलतया प्राण अवस्थाप्यन्त**) उस में जल भरे घड़े के समान निश्चलता से प्राण ठहराये जाते हैं (**इति कुम्भकः**) इस कारण कुम्भक कहलाता है। (**त्रिविधोऽयं प्राणायामः**) यह प्राणायाम तीन भेदों वाला है (**देशेन कालेन सङ्ख्यया च**) देश से-काल से- सङ्ख्या से

(**उपलक्षितो दीर्घसूक्ष्मसंज्ञो भवति**) उपलक्षित हुआ जैसे - (**नासाप्रदेशान्तादौ**) नासिका देशान्तादि में (**कालेनोपलक्षितो**) काल से उपलक्षित हुआ (**यथा षट्त्रिंशन्मात्रादिप्रमाणः**) जैसे छः-तीन-क्षण मात्रादि प्रमाण अर्थात् क्षण और उनके समूह का नाम काल है। (**सङ्ख्ययोपलक्षितो**) गणना से भी उपलक्षित हुआ (**यथा इयतोवारान्कृतः**) जैसे इतनी बार किया (**एतावद्भिः श्वासप्रश्वासैः प्रथम उद्घातो भवतीति**) इतने श्वास प्रश्वासों से पहला उद्घात होता है। (**एतज्ज्ञानाय सङ्ख्याग्रहणमुपात्तम्**) इस ज्ञान के लिये गणना बतलाई गई है। (**उद्घातो नाम नाभिमूलात्प्रेरितस्य वायोः शिरसि अभिहननम्**) उद्घात का अर्थ नाभि के मूल से प्रेरणा की हुई वायु का शिर में टक्कर खाना है ॥५०॥

(**त्रीन्प्राणायामानभिधाय चतुर्थमभिधातुमाह**) तीन प्राणायामों को कहकर चौथे का आगे कथन करते हैं -

ऋषिदयानन्द कृत व्याख्या -

(क) और यह प्राणायाम चार प्रकार से होता है। (**स तु बाह्या०**) अर्थात्र एक बाह्यविषय, दूसरा आभ्यन्तर विषय, तीसरा स्तम्भवृत्ति ॥ पाद २, सूत्र ॥५०॥ - (ऋ० भूमिका, उपासना)

(ख) एक "बाह्यविषय" अर्थात् बाहर ही अधिक रोकना दूसरा "आभ्यन्तर" अर्थात् भीतर जितना प्राण रोका जाये, उतना रोके। तीसरा "स्तम्भवृत्ति" अर्थात् एक ही बार जहाँ का तहाँ प्राण को यथाशक्ति रोक देना। - (सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास)

बाह्याभ्यान्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः ॥५१॥

सूत्रार्थ : श्वास-प्रश्वास दोनों प्राणायाम करके प्राण वायु को रोकना चौथा कहलाता है ॥५१॥

व्यासभाष्यम् : देशकालसङ्ख्याभिर्बाह्यविषयपरिदृष्ट आक्षिप्तः । तथाऽऽभ्यन्तरविषयपरिदृष्ट आक्षिप्तः । उभयथा दीर्घसूक्ष्मः । तत्पूर्वको भूमिजयात्क्रमेणोभयोर्गत्यभावश्चतुर्थः प्राणायामः । तृतीयस्तु विषयानालोचितो गत्यभावः सकृदारब्ध एव देशकालसङ्ख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः । चतुर्थस्तु श्वासप्रश्वासयोर्विषयावधारणात्क्रमेण भूमिजयादुभयाक्षेपपूर्वको गत्यभावश्चतुर्थः प्राणायाम इत्ययं विशेष इति ॥५१॥

व्यास-भाष्य-पदार्थ : (**देशकालसङ्ख्याभिर्बाह्यविषयपरिदृष्ट आक्षिप्तः**) देश-काल-सङ्ख्या द्वारा रेचक प्राणायाम करके उसको त्यागना । (**तथाऽऽभ्यन्तरविषयपरिदृष्ट आक्षिप्तः**) उसी प्रकार पूरक प्राणायाम करके त्यागना । (**उभयथा दीर्घसूक्ष्मः**) दीर्घसूक्ष्म दोनों प्रकारों से (**तत्पूर्वको भूमिजयात्**) उसको पूर्व में करके उस भूमि के जय से (**क्रमेणोभयोर्गत्यभावश्चतुर्थः**) क्रम से दोनों की गति का अभाव चौथा प्राणायाम कहलाता है (**तृतीयस्तु विषयानालोचितो गत्यभावः सकृदारब्ध एव**) तीसरा प्राणायाम तो उसके विषयों को न जानकर गति का अभाव एकदम रोका हुआ (**देशकालसङ्ख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः**) देश-काल-सङ्ख्या द्वारा दीर्घसूक्ष्म कहलाता है । (**चतुर्थस्तु श्वासप्रश्वासयोर्विषयावधारणात्**) चौथा तो श्वास-प्रश्वास दोनों को करके (**क्रमेण भूमिजयादुभयाक्षेपपूर्वकः**) क्रम से भूमियों के जय होने पर दोनों के त्यागपूर्वक (**गत्यभावश्चतुर्थः प्राणायामः**) जो गति का अभाव वह चौथा प्राणायाम है (**इत्ययं विशेष इति**) इतना यह तीसरे से विशेष है ॥५१॥

भोज-वृत्ति : प्राणस्य बाह्यो विषयो नासाद्वारदेशान्तादिः । आभ्यन्तरो विषयो हृदयनाभिचक्रादिः । तौ द्वौ विषयावाक्षिप्य पर्यालोच्य यः स्तम्भरूपो गतिविच्छेदः स चतुर्थः प्राणायामः तृतीयस्मात्कुम्भका-

ख्यादयमस्य विशेषः - स बाह्याभ्यन्तरविषयावपर्यालोच्यैव सहसा तप्तोपलनिपतितजलन्यायेन युगपत्स्तम्भवृत्त्या निष्पद्यते । अस्य तु विषय द्वयाक्षेपक निरोधः । अयमपि पूर्ववद्देशकालसङ्ख्याभिरूपलक्षितो द्रष्टव्यः ॥५१॥ चतुर्विधस्यास्य फलमाह -

भोज-वृत्ति-पदार्थ : (**प्राणस्य बाह्यो विषयो नासाद्वारदेशान्तादिः**) प्राण का बाह्य विषय नासिका द्वार देशान्तादि (**आभ्यन्तरो विषयो हृदयनाभिचक्रादिः**) अन्दर का विषय हृदय नाभिचक्रादि (**तौ द्वौ विषयावाक्षिय पर्यालोच्य यः**) वह दोनों विषय अनुभव के पश्चात् त्याग कर (**स्तम्भरूपो गतिविच्छेदः**) स्तम्भ के समान गति का रोकना (**स चतुर्थः प्राणायामः**) वह चौथा प्राणायाम है । (**तृतीयस्मात्कुम्भकाख्यादयमस्य विशेषः**) तीसरे कुम्भक नाम वाले से यह इसकी विशेषता है कि - (**स बाह्याभ्यन्तरविषयावपर्यालोच्यैव सहसा तप्तोपलनिपतितजलन्यायेन युगपत्स्तम्भवृत्त्या निष्पद्यते**) वह बाह्य-आभ्यन्तर दोनों विषयों को करके एक साथ जैसे तप्त उपले पर डाला हुआ जल सूख जाता है इस प्रकार एक साथ कुम्भक वृत्ति से किया जाता है । (**अस्य तु विषय द्वयाक्षेपक निरोधः**) इस चौथे का तो दोनों विषयों को करके निरोध होता है (**अयमपि पूर्ववद्देशकालसङ्ख्याभिरूपलक्षितो द्रष्टव्यः**) और यह चौथा भी पूर्व प्राणायामों के समान देश-काल-सङ्ख्या के सहित करने योग्य है ॥५१॥

(**चतुर्विधस्यास्य फलमाह**) इस चार भेदों वाले प्राणायाम के फल को आगे कहते हैं -

ऋषिदयानन्द कृत व्याख्या -

(क) और चौथा जो बाहर भीतर रोकने से होता है । अर्थात् जो कि (**बाह्याभ्यन्तर०**) इसका विषय । वे चार प्राणायाम इस प्रकार के

होते हैं कि जब भीतर से बाहर को श्वास निकले, तब उसको बाहर ही रोक दें, उसको प्रथम प्राणायाम कहते हैं । जब बाहर से श्वास भीतर को आवे, तब उसको जितना रोक सकें, उतना भीतर ही रोक दें, इसको दूसरा प्राणायाम कहते हैं । तीसरा स्तम्भवृत्ति है कि न प्राण को बाहर निकालें और न बाहर से भीतर ले जायें, किन्तु जितनी देर सुख से हो सकें, उसको जहाँ का तहाँ ज्यों का त्यों एकदम रोक दें । और चौथा यह है कि जब श्वास भीतर से बाहर को आवे, तब बाहर ही कुछ कुछ रोकता रहे और जब बाहर से भीतर जावे, तब उसको भीतर ही थोड़ा थोड़ा रोकता रहे, इसको बाह्याभ्यन्तराक्षेपी कहते हैं । और इन चारों का अनुष्ठान इसलिये है कि जिससे चित्त निर्मल होकर उपासना में स्थिर रहे ॥ पाद २, सूत्र ५१॥ – (ऋ० भूमिका, उपासना)

(ख) चौथा "बाह्याभ्यन्तराक्षेपी" अर्थात् जब प्राण भीतर से बाहर निकलने लगे, तब उससे विरुद्ध उसको न निकलने देने के लिये बाहर से भीतर लें और जब बाहर से भीतर आने लगे तब भीतर से बाहर की ओर प्राणों को धक्का देकर रोकता रहे ।

– (सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास)

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ॥५२॥

सूत्रार्थ : उस चतुर्विध प्राणायाम से ज्ञान के ऊपर जो आवरण वह नष्ट हो जाता है ॥५२॥

व्यासभाष्यम् : प्राणायामानभ्यस्यतोऽस्य योगिनः क्षीयते विवेकज्ञानावरणीयं कर्म । यत्तदाचक्षते – महामोहमयेनेन्द्रजालेन प्रकाशशीलं सत्त्वमावृत्य तदेवाकार्ये नियुङ्क्त इति । तदस्य प्रकाशावरणं कर्म संसारनिबन्धनं प्राणायामाभ्यासादुर्बलं भवति प्रतिक्षणं च

क्षीयते । तथा चोक्तम् - "तपो न परं प्राणायामात्ततो विशुद्धिर्मलानां दीप्तिश्च ज्ञानस्य" इति ॥५२॥ किं च -

व्यास-भाष्य-पदार्थ : (प्राणायामानभ्यस्यतोऽस्य योगिनः क्षीयते विवेकज्ञानावरणीयं कर्म यत्) प्राणायामों का अभ्यास करते हुए योगी के विवेकज्ञान का आवरणरूप जो कर्म वह नष्ट हो जाता है । **(तदाचक्षते)** उसको ऐसा कहते हैं - **(महामोहमयेनेन्द्रजालेन प्रकाशशीलं सत्त्वमावृत्य तदेवाकार्ये नियुङ्क्त इति)** महामोहरूपइन्द्रजाल = ऐश्वर्यरूप जाल से प्रकाश स्वभाव बुद्धि को ढककर वह ही अकार्य में युक्त किये हुए है । **(तदस्य प्रकाशावरणं कर्म संसारनिबन्धनं)** इस योगी के ज्ञान पर आवरणरूप जो कर्म वही संसार बन्धन है **(प्राणायामाभ्यासादुर्बलं भवति)** प्राणायाम के अभ्यास से वह निर्बल होता है **(प्रतिक्षणं च क्षीयते)** क्षण क्षण नष्ट होता है । **(तथा चोक्तम्)** वैसा ही कहा है - **(तपो न परं प्राणायामात्)** प्राणायाम से अधिक कोई तप नहीं है **(ततो विशुद्धिर्मलानां दीप्तिश्च ज्ञानस्य इति)** उससे मलों का अभाव रूप शुद्धि और ज्ञान का प्रकाश होता है ॥५२॥

(किं च) और क्या -

भोज-वृत्ति : ततस्तस्मात्प्राणायामात्प्रकाशस्य चित्तसत्त्वागतस्य यदावरणं क्लेशरूपं तत्क्षीयते विनश्यतीत्यर्थः ॥५२॥ फलान्तरमाह -

भोज-वृत्ति-पदार्थ : (ततस्तस्मात्प्राणायामात्प्रकाशस्य चित्तसत्त्वागतस्य यदावरणं क्लेशरूपं तत्क्षीयते विनश्यतीत्यर्थः) इस कारण उस चतुर्विध प्राणायाम से सत्त्वरूप चित्त के प्रकाश पर जो क्लेशरूपी आवरण वह नष्ट हो जाता है यह अर्थ है ॥५२॥

(फलान्तरमाह) दूसरा फल कहते हैं -

ऋषिदयानन्द कृत व्याख्या -

(क) **(तत०)** इस प्रकार प्राणायाम पूर्वक उपासना करने से आत्मा के ज्ञान का आवरण अर्थात् ढांकने वाला जो अज्ञान है वह नित्य प्रति नष्ट होता जाता है, और ज्ञान का प्रकाश धीरे धीरे बढ़ता जाता है ॥ पाद २, सूत्र ५२॥ - (ऋ० भूमिका, उपासना)

(ख) जब मनुष्य प्राणायाम करता है तब प्रतिक्षण उत्तरोत्तर काल में अशुद्धि का नाश और ज्ञान का प्रकाश होता जाता है जब तक मुक्ति न हो तब तक उसके आत्मा का ज्ञान बराबर बढ़ता जाता है ।

- (सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास)

नोंट - योग साधना का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् साधक सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने लिये योगशास्त्र का व्यास भाष्य, भोजवृत्ति व महर्षि दयानन्द द्वारा अपने ग्रन्थों में की गई योग सूत्रों की व्याख्या सहित योग शास्त्र पढ़े ।

: प्राप्ति स्थान :

आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय,
देलवाडा - आबूपर्वत
जि० सिरोही (राजस्थान) पिन ३०७ ५०१

महर्षि दयानन्द द्वारा किये गये यजुर्वेद भाष्य के सप्तदशोऽध्याय में योगी की सिद्धियों का वर्णन

फिर योगियों के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

पृथिव्याऽअहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम् ।
दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम् ॥

यजु० १७.६७

पदार्थ : हे मनुष्यो ! जैसे किये हुए योग के अङ्गो के अनुष्ठान संयमसिद्ध अर्थात् धारणा, ध्यान और समाधि में परिपूर्ण (**अहम्**) मैं (**पृथिव्या**) पृथिवी के बीच (**अन्तरिक्षम्**) आकाश को (**उद्, आ, अरुहम्**) उठ जाऊँ वा (**अन्तरिक्षात्**) आकाश से (**दिवम्**) प्रकाशमान सूर्यलोक को (**आ, अरुहम्**) चढ़ जाऊँ वा (**नाकस्य**) सुख कराने हारे (**दिवः**) प्रकाशमान उस सूर्यलोक के (**पृष्ठात्**) समीप से (**स्वः**) अत्यन्त सुख और (**ज्योतिः**) ज्ञान के प्रकाश को (**अहम्**) मैं (**अगाम्**) प्राप्त होऊँ वैसा तुम भी आचरण करो ॥६७॥

भावार्थ : जब मनुष्य अपने आत्मा के साथ परमात्मा के योग को प्राप्त होता है तब अणिमादि सिद्धि उत्पन्न होती है, उसके पीछे कहीं से न रुकने वाली गति से अभीष्ट स्थानों को जा सकता है, अन्यथा नहीं ॥६७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

स्वर्यन्तो नापेक्षन्तऽआद्याꣳ रोहन्ति रोदसी ।
यज्ञं ये विश्वतोधारꣳ सुविद्वाꣳसो वितेनिरे ॥

यजु० १७.६८

पदार्थ : (**ये**) जो (**सुविद्वांसः**) अच्छे पण्डित योगी जन

(**यन्तः**) योगाभ्यास के पूर्ण नियम करते हुओं के (**न**) समान (**स्वः**) अत्यन्त सुख की (**अप, ईक्षते**) अपेक्षा करते हैं वा (**रोदसी**) आकाश और पृथिवी को (**आ, रोहन्ति**) चढ़ जाते अर्थात् लोकान्तरों में इच्छापूर्वक चले जाते वा (**द्याम्**) प्रकाशमय योगविद्या और (**विश्वतोधारम्**) सब ओर से सुशिक्षायुक्त वाणी है जिसमें (**यज्ञम्**) प्राप्त करने योग्य उस यज्ञादि कर्म का (**वितेनिरे**) विस्तार करते हैं, वे अविनाशी सुख को प्राप्त होते हैं ॥६८॥

भावार्थ : इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सारथि घोड़ो को अच्छे प्रकार सिखा और अभीष्ट मार्ग में चला कर सुख से अभीष्ट स्थान को शीघ्र जाता है, वैसे ही अच्छे विद्वान् योगीजन जितेन्द्रिय होकर नियम से अपने को अभीष्ट परमात्मा को पाकर आनन्द का विस्तार करते हैं ॥६८॥

फिर योगी के कर्मों के फलों का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है ।

अग्ने सहस्राक्ष शतमूर्द्धञ्छतं ते प्राणाः सहस्रं व्यानाः ।
त्वꣳ साहस्रस्य रायऽईशिषे तस्मै ते विधेम वाजाय स्वाहा ॥७१॥

यजु. १७.७१

पदार्थ : हे (**सहस्राक्ष**) हजारों व्यवहारों में अपना विशेष ज्ञान वा (**शतमूर्द्धन्**) सैकड़ों प्राणियों में मस्तक वाले (**अग्ने**) अग्नि के समान प्रकाशमान योगिराज ! जिस (**ते**) आप के (**शतम्**) सैकड़ो (**प्राणाः**) जीवन के साधन (**सहस्रम्**) (**व्यानाः**) सब क्रियाओं के निमित्त शरीरस्थ वायु तथा जो (**त्वम्**) आप (**साहस्रस्य**) हजारों जीव और पदार्थो का आधार जो जगत् उसके (**रायः**) धन के (**ईशिषे**) स्वामी हैं (**तस्मै**) उस (**वाजाय**) विशेष ज्ञान वाले (**ते**) आप के लिये हम लोग (**स्वाहा**) सत्यवाणी से (**विधेम**) सत्कारपूर्वक व्यवहार करें ॥७१॥

भावार्थ : जो योगी पुरुष तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान आदि योग के साधनों से योग (धारणा, ध्यान, समाधिरूप संयम) के बल को प्राप्त हो और अनेक प्राणियों के शरीरों में प्रवेश करके अनेक शिर नेत्र आदि अङ्गों से देखने आदि क्रार्यों को कर सकता है, अनेक पदार्थों वा धनों का स्वामी भी हो सकता है, उसका हम लोगों को अवश्य सेवन करना चाहिये ॥७१॥

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के पुनर्जन्मविषय प्रकरण से उद्धृत

मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः ।
नानायोनिसहस्राणि मयोषितानि यानि वै ॥१॥
आहारा विविधाः भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः ।
मातरो विविधा दृष्टाः पितरः सुहृदस्तथा ॥२॥
अवाङ्मुखः पीड्यमानो जन्तुश्चैव समन्वितः ॥३॥

भावार्थ :- जब मनुष्य को ज्ञान होता है तब वह ठीक-ठीक जानता है कि (मृतश्चाहं पुन०) मैंने अनेक बार जन्म-मरण को प्राप्त होकर नाना प्रकार के हजारह गर्भाशयों का सेवन किया ॥१॥ (आहारा वि०) अनेक प्रकार के भोजन किये, अनेक माताओं के स्तनों का दुग्ध पिया, अनेक माता-पिता और सुहृदों को देखा ॥२॥ (अवाङ्मुखः) मैंने गर्भ में नीचे मुख ऊपर पग इत्यादि नाना प्रकार की पीड़ाओं से युक्त होकर अनेक जन्म धारण किये। परन्तु अब इन महादुःखों से तभी छूटूंगा कि जब परमेश्वर में पूर्ण प्रेम और उसकी आज्ञा का पालन करूँगा, नही तो इस जन्म मरणरूप दुःखसागर के पार जाना कभी नहीं हो सकता ॥३॥

स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः ॥८॥

(पातं० अ० १, पा० २, सू० ९)

पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः ॥९॥ (न्या० अ० १, अ० १ सू० १९)

भाष्यम् (**स्वरस०**) योगशास्त्रे पतञ्जलिमहामुनिना तदुपरि भाष्यकर्त्ता वेदव्यासेन च पुनर्जन्मसद्भावः प्रतिपादितः । या सर्वेषु प्राणिषु जन्मारभ्य मरणत्रासाख्या प्रवृत्तिर्दृश्यते तया पूर्वापरजन्मानि भवन्तीति विज्ञायते । कुतः, जातमात्र कृमिरपि मरणत्रासमनुभवति । तथा विदुषोऽप्यनुभवो भवतीत्यतः जीवेनानेकानि शरीराणि धार्य्यन्ते । यदि पूर्वजन्मनि मरणानुभवो न भवेच्चेत्तर्हि तत्संस्कारोऽपि न स्यान्नैव संस्कारेण विना स्मृतिर्भवति, स्मृत्या विना मरणत्रासः कथं जायेत ? कुतः, प्राणिमात्रस्य मरणभवदर्शनात् पूर्वापरजन्मानि भवन्तीति वेदितव्यम् ॥८॥

(**पुनरु०**) तथा महाविदुषा गोतमेनर्षिणा न्यायदर्शने तद्भाष्यकर्त्ता वात्स्यायनेनापि पुनर्जन्मभावो मतः । यत् पूर्वशरीरं त्यक्त्वा पुनर्द्वितीयशरीरधारणं भवति तत्प्रेत्यभावाख्यः । पदार्थो भवतीति विज्ञेयम् । प्रेत्यर्थान्मरणं प्राप्य भावोऽर्थात् पुनर्जन्म धृत्वा जीवो देहवान् भवतीत्यर्थः ॥९॥

तथा योगशास्त्र में भी पुनर्जन्म का विधान किया है - (**स्वरस०**)। (**सर्वस्य प्रा०**) हर एक प्राणियों की यह इच्छा नित्य देखने में आती है कि (**भूयासमिति**) अर्थात् मैं सदैव सुखी बना रहूं, मरूं नहीं । यह इच्छा कोई भी नहीं करता कि (**मा न भुवं**) अर्थात् मैं न होऊं । ऐसी इच्छा पूर्वजन्म के अभाव से कभी नहीं हो सकती । यह 'अभिनिवेश' क्लेश कहलाता है, जो कि कृमिपर्य्यन्त को भी मरण का भय बराबर होता है । यह व्यवहार पूर्वजन्म की सिद्धि को जनाता है ॥८॥

तथा न्यायदर्शन के (**पुनरु०**) सूत्र और उसी के वात्स्यायन भाष्य में भी कहा है कि - जो उत्पन्न अर्थात् किसी शरीर को धारण

करता है, वह मरण अर्थात् शरीर को छोड़ के, पुनरुत्पन्न दूसरे शरीर को भी अवश्य प्राप्त होता है। इस प्रकार मर के पुनर्जन्म लेने को 'प्रेत्यभाव' कहते हैं ॥९॥

अत्र केचिदेकजन्मवादिनो वदन्ति - यदि पूर्वजन्मासीत्तर्हि तत्स्मरणं कुतो न भवतीति ?

अत्र ब्रूमः - भो ! ज्ञानेनत्रमुद्घाट्य द्रष्टव्यमस्मिन्नेव शरीरे जन्मतः पञ्चवर्षपर्य्यन्तं यद्यत्सुखं दुःखं च भवति, यच्च जागरितावस्थास्थानां सर्वव्यवहाराणां सुषुप्त्यवस्थायां च, तदनुभूतस्मरणं न भवति, पूर्वजन्मवृत्तस्मरणस्य तु का कथा !

(प्रश्नः) यदि पूर्वजन्मकृतयोः पापपुण्ययोः सुखदुःखफले हीश्वरोऽस्मिन् जन्मनि ददाति, तयोश्चास्माकं साक्षात्काराभावात् सोऽन्यायकारी भवति, नातोऽस्माके शुद्धिश्चेति ?

अत्र ब्रूमः - द्विविधं ज्ञानं भवत्येकं प्रत्यक्षं, द्वितीयमानुमानिकं च। यथा कस्यचिद्वैद्यस्य च शरीरे ज्वरावेशो भवेत्तत्र खलु वैद्यस्तु विद्यया कार्य्यकारणसङ्गत्यनुमानतो ज्वरनिदानं जानाति नापरश्च, परन्तु वैद्यकविद्यारहितस्य ज्वरस्य प्रत्यक्षत्वात् किमपि मया कुपथ्यं पूर्वं कृतमिति जानाति, विना कारणेन कार्य्यं नैव भवतीति दर्शनात्। तथैव न्यायकारीश्वरोऽपि विना पापपुण्याभ्यां न कस्मैचित् सुखं दुःखं च दातुं शक्नोति। संसारे नीचोच्च- सुखिदुःखिदर्शनाद् विज्ञायते पूर्वजन्मकृते पापपुण्ये बभूवुरिति।

अत्रैकजन्मवादिनामन्येऽदृशाः प्रश्नाः सन्ति, तेषां विचारेणोत्तराणि देयानि। किञ्च, न बुद्धिमतः प्रत्यखिललेखनं योग्यं भवति, ते ह्युद्देश्यमात्रेणाधिकं जानन्ति। ग्रन्थोऽपि भूयान्न भवेदिति मत्वाऽत्राधिकं नोल्लिख्यते।

भाषार्थ : इनमें अनेक मनुष्य ऐसा (प्रश्न) करते हैं कि जो पूर्वजन्म होता है, तो हमको उसका ज्ञान इस जन्म में क्यों नहीं होता ?

(उत्तर) आँख खोल के देखो कि जब इसी जन्म में जो जो सुख दुःख तुमने बाल्यावस्था में अर्थात् जन्म से पाँच वर्ष पर्य्यन्त पाये हैं, उनका ज्ञान रहता, अथवा जो कि नित्य पठन पाठन और व्यवहार करते हैं, उनमें से भी कितनी ही बातें भूल जाते हैं, तथा निद्रा में भी यही हाल हो जाता है कि अब के किये का भी ज्ञान नहीं रहता । जब इसी जन्म के व्यवहारों को इसी शरीर में भूल जाते हैं, तो पूर्व शरीर के व्यवहारों का कब ज्ञान रह सकता है ?

तथा ऐसा भी (प्रश्न) करते हैं कि जब हम को पूर्वजन्म के पाप-पुण्य का ज्ञान नहीं होता, और ईश्वर उनका फल सुख-दुःख देता है, इससे ईश्वर का न्याय वा जीवों का सुधार कभी नहीं हो सकता ।

(उत्तर) ज्ञान दो प्रकार का होता है - एक प्रत्यक्ष, दूसरा अनुमानादि से । जैसे एक वैद्य और अवैद्य, इन दोनों को ज्वर आने से वैद्य तो इसका पूर्व निदान जान लेता है, और दूसरा नहीं जान सकता । परन्तु उस पूर्व कुपथ्य का कार्य्य जो ज्वर है, वह दोनों का प्रत्यक्ष होने से वे जान लेते हैं कि किसी कुपथ्य से ही यह ज्वर हुआ है, अन्यथा नहीं । इस में इतना विशेष है कि विद्वान् ठीक ठीक रोग के कारण और कार्य्य को निश्चय करके जानता है, और वह अविद्वान् कार्य्य को तो ठीक ठीक जानता है, परन्तु कारण में उसको यथावत् निश्चय नहीं होता । वैसे ही ईश्वर न्यायकारी होने से किसी को बिना कारण से सुख वा दुःख कभी नहीं देता । जब हम को पुण्य पाप का कार्य्य सुख और दुःख प्रत्यक्ष है, तब हम को ठीक निश्चय होता है कि पूर्वजन्म के पाप-पुण्यों के बिना उत्तम मध्यम और नीच शरीर तथा

बुद्ध्यादि पदार्थ कभी नहीं मिल सकते । इससे हम लोग निश्चय करके जानते हैं कि ईश्वर का न्याय और हमारा सुधार ये दोनों काम यथावत् बनते हैं ।

इत्यादि प्रश्नोत्तर बुद्धिमान् लोग अपने विचार से यथावत् जान लेवें । मैं यहाँ इस विषय के बढ़ाने की आवश्यकता नहीं देखता ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवन चरित्र में वर्णित कुछ सिद्धियाँ ।

१. प्रयाग में अलोपी के बाग में निवास स्थान था एक दिन रायबहादुर सुन्दरलाल आदि कई सज्जन दर्शन के लिए आये । उस समय स्वामीजी कुटिया के अन्दर समाधिस्थ थे । आधे घण्टे के बाद बाहर आए, तब मुस्करा रहे थे । रायबहादुर सुन्दरलालजी ने कारण पूछा तो स्वामीजी ने कहा "देखिए एक व्यक्ति आ रहा है, उसकी लीला देखना" कुछ समय पश्चात् एक व्यक्तिने आकर खाने के लिए कुछ मिठाई भेंट की । स्वामीजी ने उसमें से थोड़ी सी मिठाई उसे भी खाने के लिए देनी चाही, जब उसने नहीं ली । तब स्वामीजी ने डाँटकर कहा, लेते क्यों नहीं । वह भयभीत सा होकर थर थर काँपने लगा । स्वामीजी ने बाबू सुन्दरलाल आदि सज्जनों को कहा - 'देखिए यह मिष्टान्न विषयुक्त है' राय बहादुर पुलिस मंगवाने के लिये उद्यत हुए । तब योगीराज ने कहा - 'बाबूजी देखो तो सही, पापी अपने पाप से ही कितना कांप रहा है । इसके लिए यही दण्ड पर्याप्त है परीक्षा करने पर वह मिठाई विषयुक्त सिद्ध हुई ।'

२. पटना निवास काल में स्वामीजी का रसोईया राजनाथ नगर के एक भक्त के घर से महाराज के लिए दूध लाया करता था । वर्षा

ऋतु थी । एक दिन दूध लिए आ रहा था तो मार्ग में एक विषधर सर्प देखकर डरने लगा हांपते हुए आकर कुटिया के समीप दम लिया । महाराज ने दूध पीते समय पूछा - "क्यों राजनाथ आज रास्ते में डर कैसे गया था । क्या कोई सांप दिखाई दिया था, डरा न कर, आत्मा अमर है ।" राजनाथ आश्चर्यान्वित होकर धन्य धन्य कहने लगा ।

३. अजमेर के बाबू श्यामसुन्दरजी महाराज के लिये अपने घर से दूध भिजवाया करते थे । एक दिन उनकी कृपण माता ने दूध ले जाने वाले भृत्य से कुछ उत्तेजना पूर्वक सा कहा - "यह दूध उस सिर मुण्डे साधु को क्यों पिलाया जाता है ।" जब वह दूध लेकर ऋषि के पास पहुँचा । स्वामीजी बोले "भाई यह दूध लौटा ले जाओ । इस प्रकार की भावनाओं से भरा दूध मुझे नहीं चाहिये । मेरे लिए अनिच्छा से भेजा दूध कभी मत लाना ।"

४. अमृतसर में एक कमरे में बैठे हुए वेद भाष्य लिख रहे थे । अकस्मात् किसी विचार तरंग में उठ कर खड़े हो गये, कहने लगे कि शीघ्रता से इस स्थान की किताबें और सब सामान किसी दूसरे स्थान पर ले चलो । सब इस अकारण आज्ञा पर आश्चर्यान्वित थे । अभी सामान दूसरे कमरे गया ही था कि उस कमरे की छत गिर पड़ी ।

५. महर्षि दयानन्द मेरठ में थे, एक दिन कर्नल अलकाट और मैडम ब्लैवस्की भी दर्शनार्थ आयें । कर्नल ने स्वामीजी से कहा कि - उन्हें व मैडम को इस बात में शंका है कि स्वामी शंकराचार्य ने अपनी आत्मा को एक राजा के शरीर में प्रविष्ट करा दिया था, जो उसी दिन मरा था । स्वामीजी ने उसे सम्भव बताते हुए कहा कि - मैं प्रथमकोटि का योगी नहीं हूँ । केवल मध्यम कोटि का हूँ, परन्तु मैं भी अपनी चेतना-शक्ति को शरीर के किसी एक भाग में केन्द्रित कर सकता हूँ, अर्थात् उस भाग को छोड़कर मेरे शरीर

के अन्य सब भाग मृतवत् हो जायेंगे । यदि आप यह दृश्य देखना चाहें तो मैं आपको दिखा सकता हूँ। जब मैं मध्यम कोटि का योगी इतना कर सकता हूँ तो यह सम्भव है कि एक उच्चकोटि का योगी इससे एक पद आगे बढ़कर अपने आत्मा को दूसरे के शरीर में प्रविष्ट करा सके ।

- (महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र ले. श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय; पृ. ५३३)

६. एक नवाब साहब ने पूछा - "क्या कोई ऐसी विद्या है जिससे यहाँ बैठा मनुष्य अन्यत्र की बात जान ले ?" उत्तर दिया - "योगी लोग इच्छा नहीं करते । सबसे गुप्त ब्रह्मविद्या है योगी का उसीको जानने का उद्देश्य है । अत: यदि योगी चाहे तो योग विद्या द्वारा गुप्त बातों को जान सकता है ।"

७. मगर हमें दु:ख न देगा - एक दिन महाराज मौज में जल में लेटे हुए थे, आधाशरीर जल में और आधा जल से बाहर था कि इतने में थोड़ी दूर पर ही एक मगर निकला । पण्डित हृदयनारायण वकील के लघु भ्राता उसे देखकर भागे और चिल्लाये कि स्वामीजी मगर निकला है, परन्तु उनके मुख पर भय की किञ्चिन्मात्र रेखा भी दिखाई नहीं दी, वे जैसे पड़े थे वैसे ही पड़े रहे और बोले कि जब हम उसका कुछ नहीं बिगाड़ते तो वह भी हमें दु:ख न देगा ।

८. रणमस्त साँडो का दमन - एक दिन अपराह्न में स्वामीजी जङ्गल की ओर शौच के लिए जा रहे थे । कई विद्यार्थी और अनुरागी जन उनके साथ थे । थोड़ी दूर चलकर गुलजारीलाल खत्री के बाग के सामने देखा कि मार्ग रुका हुआ है, कुछ और आगे बढ़े तो देखा कि मार्ग दूसरी और से भी रुका हुआ है, न इधर के लोग उधर जा सकते हैं और न उधर के लोग इधर आ सकते हैं । कारण यह था कि बीच में दो साँड आपस में लड़ रहे थे । दोनों साँडों के मुँह एक दूसरे से मिल

रहे थे और वे एक-दूसरे को धकेलने का यत्न कर रहे थे। यह द्वन्द्वयुद्ध निरन्तर दो घण्टे से हो रहा था। जिन लोगों को अधिक आवश्यक कार्य था वे बाग के पार्श्व से निकल जाते थे। थोड़ी देर तक महाराज भी उस युद्ध की समाप्ति की प्रतीक्षा करते रहे। फिर लोगों ने उनसे कहा कि दूसरे मार्ग से निकल चलें। इस बात को स्वामीजी ने 'हूँ' कहकर इन्कार कर दिया और तुरन्त ही उन रणमस्त साँडों की ओर चलने लगे। उनके साथियों ने भी उन्हें रोका और अन्य लोग भी चिल्लाये कि बाबाजी क्या करते हो, परन्तु उन्होंने न सुना और उन युद्धोन्मत्त साँडों के पास जाकर प्रत्येक का एक-एक सींग एक-एक हाथ से पकड़ लिया और इस जोश से उन्हें धक्का दिया कि दोनों का मुँह आकाश की ओर उठ गया और दोनों को एक-दूसरे से अलग-अलग कर दिया। साँड इतने डर गये कि मार्ग छोड़कर चले गये और लोगों के आने-जाने का मार्ग खुल गया।

नोंट - "बलेषु हस्ति बलादीनि" तृतीयो विभूतिपाद २४ सूत्र। हस्तिबल में संयम करने से हस्तिबल प्राप्त होता है। हस्तिबल के बिना कोई आदमी लडते हुए दो साँडों को एक एक हाथ से दोनों के सींग पकड़कर अलग नहीं कर सकता। आज के नकली योगी दो लड़ते हए बकरों के सींग पकड़कर अलग-अलग कर के दिखा देवें।

९. सिंह मुझे देखकर मुँह फेर कर चला गया - एक बार गङ्गा तट पर विचरते हुए स्वामीजी एक सघन वन में जा निकले। वहाँ उन्हें सामने से एक सिंह आता हुआ दिखाई दिया। वे सीधे चलते रहे जब वह उस सिंह के निकट पहुँचे तो उसने उनकी ओर देखकर मुँह फेर लिया और जंगल में घुस गया।

१०. स्वामीजी को वेद कण्ठस्थ थे - महाराज वेदभाष्य की रचना के कार्य में व्यस्त रहते थे। वे पण्डितों से वेदभाष्य लिखाया करते थे। उनके हाथ में कोई पुस्तक नहीं रहती थी फिर भी वे इतनी शीघ्रता से ग्रंथ लिखाते थे कि लेखकों को लिखने से अवकाश नहीं मिलता था, उन्हें वेद कण्ठस्थ थे।

११. पाश्चात्य विज्ञानवेत्ता निरुत्तर - एक दिन पश्चिमी विज्ञान के एक पण्डित ने योग की सिद्धियों की सत्यता में शङ्का की। महाराज ने पहले तो युक्ति-प्रमाण द्वारा उनकी सत्यता निरूपित की और अन्त में यह कहा कि क्या आप समझते हैं कि यह इतना बड़ा कार्य योगसिद्धि के बिना ही कर रहे हैं। इस पर वह शान्त हो गया।

१२. जल पर ध्यानावस्थित - नौलखा बाग के समीप ही एक बृहत् सरोवर है। महाराज गोवर्द्धन पर्वत को उसी के तीर-तीर जाया करते थे। एक दिन सहजानन्द ने देखा कि महाराज पद्मासन लगाये जल पर ध्यानावस्थित हैं। सहजानन्द यह देखकर विस्मित हुए, परन्तु साथ ही गुरुदेव की योगविद्या में निपुणता उनके हृदय पर अङ्कित हो गई और श्रीचरणों में उनका अगाध प्रेम हो गया। कभी-कभी महाराज लम्बी समाधि भी लगाया करते थे। जब ऐसा करते थे तो एक दिन पूर्व सबसे कह दिया करते थे कि कल हमारी कोठरी के पास कोई न आये और न कोई द्वार खटखटाये, परन्तु सहजानन्द इतने दयापात्र हो गये थे कि उन्हें खिड़की में से महाराज को योगारूढ अवस्था में देखने की आज्ञा दे दी जाती थी। ऐसी अवस्था में श्वास-प्रश्वास की गति रुक जाती थी और महाराज का शरीर सर्वथा निष्कम्प हो जाता था। उनके मुखमण्डल पर दिव्य आभा खेलने लगती थी। सहजानन्द को एक से अधिक बार इस अनुपम दृश्य से अपने नेत्रों को तृप्त और पवित्र करने का सौभाग्य

प्राप्त हुआ था । कहते हैं कि महाराज २४ घण्टे तक असम्प्रज्ञात समाधि लगा सकते थे ।

१३. परोक्षदर्शन - एक दिन महाराणा तथा सहजानन्दादि श्रीसेवा में उपस्थित थे और विविध विषयों पर वार्त्तालाप हो रहा था कि महाराज ने कहा कि पण्डित सुन्दरलालजी आ रहे हैं, यदि पहले से सूचना दे देते तो यान का उचित प्रबन्ध हो जाता । इसपर महाराणा ने कहा कि यान का प्रबन्ध अब भी हो सकता है, परन्तु महाराज बोले कि अब तो वे बैलगाड़ी में आ रहे हैं । उसका एक बैल श्वेत है और एक के शरीर पर लाल धब्बे हैं, वे कल यहाँ पहुँच जाएँगे । अगले दिन पण्डित सुन्दरलाल उदयपुर पहुँच गये और महाराज का कथन अक्षरशः सत्य निकला ।

अहिंसा की प्रबल विजय - स्वामी श्रद्धानन्द

मैं बतला चुका हुं कि मैं विचित्र नास्तिक था जो योगाभ्यास और उसकी विभूतियों पर विश्वास रखने वाला था और साथ ही हट प्रक्रियाओं का प्रयोग भी करता था । बरेली में और वहाँ से लौटकर प्रयाग में कुछ विशेष परिश्रम किया, परन्तु कुपथ के कारण बीमार हो गया । मैंने सुना कि त्रिवेणी पार झूंसी के जंगल में एक महात्मा रहते हैं, जिनके वश में एक शेर है । दिन को अन्तर्धान रहते हैं, केवल रात को उनके दर्शन हो सकते हैं । मैं अपने मित्र बुद्धसेन तिवारी सहित जिनको मेरी संगत ने ही योग की ओर झुकाया था, सिदौसी भोजन से निवृत्त होकर शाम को पार उतर गया । घूमते हुए दस बजे आश्रम के समीप पहुँचे । एक वृद्ध केवल कौपीनधारी महात्मा को समाधिस्थ मैदान में बैठा देखा । तीन बजे तक न उनकी समाधि खुली और न

हमारी आँख झपकी । तीन बजे के लगभग शेर की गरज सुनाई दी फिर वह सीधा महात्मा की ओर आता दिखाई दिया । समीप पहुँचने पर उनके पैर चाटने लगा । महात्मा ने आँखे खोली, शेर के सिर पर प्यार का हाथ फेरा और कहा - "बच्चा ! आ गया, अच्छा अब चला जा" शेर ने सिर चरणों में रख दिया, और उठकर जंगल की राह ली । उसी समय हम दोनों ने पैर छूकर महात्मा को प्रणाम किया और इस अद्वितीय विभूती पर आश्चर्य प्रक्ट किया । महात्मा का उत्तर कभी नहीं भूलता - यह कोई विभूति नहीं है बच्चा ! इस शेर के किसी शिकारी ने गोली मारी थी । इस के पैर में ऐसा घाव लगा कि यह चल नहीं सकता था और व्याकुलता से हृदयवेधक शब्द कर रहा था । शायद प्यासा था । मैंने लाकर पानी पिलाया और जंगल से अपनी जानी हुई एक बूटी लाया और रगड़ कर इसके पैर में लगाई । घाव अच्छा होने लगा । जब तक मैं दवाई लगाता रहता यह नित्य मेरे पैर चाटता रहता । जब सर्वथा निरोग हो गया तब भी इसका व्यसन नहीं छूटा । नित्य मेरी उपासना की समाप्ति पर आ जाता है । सुनो बच्चा ! अहिंसा का अभ्यास और सेवा व्यर्थ नहीं जाते । हम पर जो प्रभाव पड़ा वर्णन नहीं किया जा सकता । मैंने अपने साधनों और बिमारी की कहानी सुनाई । महात्मा ने बतलाया कि हठयोग की क्रियायें शरीर के लिए बहुत हानिकारक सिद्ध होती हैं, और कैवल्य के मार्ग से विमुख कर देती है । तुम राजयोग का अभ्यास करो और इनको छोड़ दो । बीमारी के दूर करने को उन्होंने ब्राह्मी बूटी का एक विशेष सेवन बतलाया । उन्हें मालूम हो गया कि मेरी परीक्षा समीप है और इसलिए आज्ञा दी कि जब मैं परीक्षा से निवृत्त होकर उनकी सेवा में उपस्थित होऊंगा तब वह मुझे राजयोग का उपदेश करेंगे ।

- कल्याणमार्ग का पथिक, स्वामी श्रद्धानन्दजी की जीवनी में वर्णित ।

संसार के महापुरुषों के शिरोमणि महापुरुष महर्षि दयानन्द सरस्वती

संसारभर के महापुरुषों में महर्षि दयानन्द की शान निराली है। अन्य महापुरुषों में किसी में एक गुण है तो किसी में दूसरा। कोई प्रभुभक्त है तो विद्वान् नहीं, कोई विद्वान् है तो योगी नहीं, कोई योगी है तो सुधारक नहीं, कोई सुधारक है तो दिलेर नहीं, कोई दिलेर है तो ब्रह्मचारी नहीं, कोई ब्रह्मचारी है तो वक्ता नहीं कोई वक्ता है तो लेखक नहीं, कोई लेखक है तो सदाचारी नहीं, कोई सदाचारी है तो परोपकारी नहीं, कोई परोपकारी है तो कर्मठ नहीं, कोई कर्मठ है तो त्यागी नहीं, कोई त्यागी है तो देशभक्त नहीं, कोई देशभक्त है तो वेदभक्त नहीं, कोई वेदभक्त है तो उदार नहीं, कोई उदार है तो शुद्ध आहारी नहीं, कोई शुद्ध आहारी है तो योद्धा नहीं, कोई योद्धा है तो सरल नहीं, कोई सरल है तो सुन्दर नहीं, कोई सुन्दर है तो बलिष्ठ नहीं, कोई बलिष्ठ है तो दयालु नहीं, कोई दयालु है तो संयमी नहीं। परन्तु यदि आप ये सभी गुण एक ही स्थान पर देखना चाहें तो देव दयानन्द को देखो, निष्पक्ष होकर देखो।

नोंट : जो मनुष्य अपने जीवन का कल्याण करना चाहते हैं। वे महर्षि दयानन्द रचित अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश को अवश्य पढ़ें।

एक मर्मस्पृक् ललित उद्गार

भारतवर्ष के प्रत्येक प्रतिष्ठित समाचारपत्र तथा नेताओं ने यहाँ तक कि विरोधियों ने भी ऋषि दयानन्द की मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए उनका गुणगान और धर्म और जाति की जो सेवाएँ की थीं उनका

वर्णन किया। यदि हम उन सब लेखों का संग्रह करें तो बड़ा भारी ग्रन्थ बन जाएगा, इसलिए हम उन सबका उल्लेख न करके केवल एक संस्कृत कविता, जो अत्यन्त ललित और मर्मस्पृक् है, उद्धृत करने पर सन्तोष करते हैं। यह कविता कविवर रामदास छबीलदासजी वर्मा ने केम्ब्रिज से भेजी थी, जहाँ वह ऋषि के देहावसान के समय विद्याध्ययन कर रहे थे।

अहो नितान्तं हृदयं विदूयते निशम्य लोकान्तरमुन्नताशयम्।
सम्प्रस्थितं वेदविदामनुत्तमं श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीं कविम् ॥१॥

वेदों के जाननेवालों में सर्वोत्तम, मेधावी, उन्नताशय श्रीदयानन्द सरस्वती के परलोक-गमन को सुनकर हृदय को अत्यन्त दुःख होता है।

दीपपंक्तिचितभूतले सति व्योम्नि तारकगणैस्समुज्ज्वले।
शोकजालतिमिराकुले तु सत्युत्ससर्ज स शरीरबन्धनम् ॥२॥

पृथिवी पर दीपकों की पंक्ति के जलने पर, तारागणों से आकाश के प्रकाशित होने पर और शोकरूपी अन्धकार के फैलने पर उसने शरीर के बन्धन को छोड़ दिया।

निःशेषपीताखिलशास्त्रसारः पूतान्तरात्मा निगमाग्निजालैः।
ज्ञानोत्तमैकाञ्जनलिप्तनेत्रो ब्रह्मैकनिध्यानविशुद्धचेताः ॥३॥
स्वकीयदेशोन्नतिमात्रलग्नः स्वप्नेऽपि न प्राप्तनिजार्थबुद्धिः।
त्यक्त्वा समस्तं तु कथन्नु कार्यं गन्तुं द्युलोकं स नमश्चकार ॥४॥

जिसने शास्त्रों के समस्त सार को पी लिया था, वेद की अग्नि से जिसका अन्तरात्मा पवित्र हो गया था, जिसने अपने नेत्रों में उत्तम ज्ञान का अञ्जन लगाया था, जिसका चित्त ब्रह्म का ध्यान करने से शुद्ध हो गया था, जो अपने देश की उन्नति में सर्वदा संलग्न था, जिसके स्वप्न में भी स्वार्थबुद्धि नहीं आई थी, उसने इस सब कार्य को छोड़कर द्युलोक जाने का विचार क्यों किया ?

विज्ञाय तस्याद्भुतचारुवृत्तं दिवौकसो जातकुतूहलाः किम् ।
तद्दर्शनायात्मनिकेतनं तमजूहवन्दिव्यगुणैरुपेतम् ॥५॥

क्या कहीं स्वर्ग के देवताओं ने उसके अद्भुत और सुन्दर चरित्र को सुनकर कुतूहलवश उस दिव्य गुणों से युक्त पुरुष को अपने गृह पर दर्शन करने के लिए तो नहीं बुला लिया ?

कृतयुगोचित एष जनः किल न चिरमर्हति वस्तुमसौ मयि ।
मनसि संकलितं कलिनेति किं स च हृतोऽखिलसाधुमनोरथैः ॥६॥

क्या कहीं कलियुग ने यह सोचकर कि यह पुरुष सत्ययुग के उपर्युक्त गुणों से युक्त है और अधिक काल तक मुझमें रहने के योग्य नहीं है, सब शुभ मनोरथों से तो उसे नहीं हर लिया ?

गुणानपेक्षेण निजप्रभुत्वं कालेन किं दर्शयितुं हृतः सः ।
नृदेहभाक् प्राक्तनकर्मयोगात् पुनः प्रपन्नः प्रकृतिं निजां वा ॥७॥

क्या कहीं काल ने, जो गुणों की अपेक्षा नहीं करता, अपना प्रभुत्व दिखाने के लिए तो उसे नहीं हर लिया ? क्या कहीं वह अपने पूर्वकालीन कर्मों के योग से मनुष्य-शरीर को पाकर फिर अपनी प्रकृति को तो प्राप्त नहीं हो गया ?

सन्देहदोलामधिरूढमेवं मनो न निश्चेतुमलं मदीयम् ।
चित्रं निगूढं चरितं विधातुर्वेत्तुं क्षमः को वद मानुषोऽस्ति ॥८॥

इस प्रकार सन्देह के हिंडोले पर आरूढ़ मेरा मन कुछ भी निश्चय नहीं कर सकता । विधाता का चरित्र विचित्र और अत्यन्त गूढ़ है उसे जानने को कौन मनुष्य समर्थ है ?

दिनानि पूर्वं कतिभिद्य आसीदसंहतास्मन्नयनोत्सवाय ।
स्मृतेस्स पन्थानभितोऽधुना तत् कथं विधेः स्याल्लषितं प्रमेयम् ॥९॥

कुछ दिन पहले जो हमारे नेत्रों को आनन्द देनेवाल था, वह अब

यहाँ से स्मृति के पथ में पहुँच गया । विधाता की इच्छा क्योंकर जानी जा सकती है ?

तातगेहवसतिर्विमानिता संश्रितश्चरम एव चाश्रयः ।
धर्मतत्त्वपरिबोधने रतस्तेन सोढमपि दुर्वचो नृणाम् ॥१०॥

उसने पिता के घर की अवहेलना करके संन्यासाश्रम का आश्रय लिया, वह धर्म के तत्त्व को जनाने में लगा रहता, उसने मनुष्यों के दुर्वचनों को भी सहन किया ।

स्वं विहाय मुहुरुच्छितं दं वारिदः श्रयति वाहिनीतटम् ।
केवलं परहिते कृतश्रमा लाघवं न गणयन्ति सज्जनाः ॥११॥

जैसे मेघ अपने ऊँचे पद को छोड़कर बार-बार नदी के तट का आश्रय लेता है, ऐसे ही परहित के लिए परिश्रम करनेवाले सज्जन अपने अपमान का विचार नहीं करते ।

यः पाखण्डमतैकखण्डनरतो वैदाख्यशस्त्रैः शुभैः,
शास्त्राणां बलवद्बलेन सततं संसेव्यमानो युधि ।
सत्पक्षः परिषच्छलेन विजयस्तम्भान् समारोपयद्,
दिक्ष्वन्यः पुरुषो हि तेन सदृशो लभ्येत कुत्राधुना ॥१२॥

जो वेद नामक शुभ शास्त्रों से पाखण्ड मतों के खण्डन में निरन्तर लगा हुआ था, युद्ध में शास्त्रों की बलवती सेना जिसकी सेवा करती थी, जिसने सत्पक्ष और सभाओं के मिष से दिशाओं में विजय का स्तम्भ स्थापित किया था, अब उसके समान पुरुष कहाँ मिल सकता है ?

एक एव खलु पद्मिनीपतिरेक एव दिवि शीतदीधितिः ।
एक एव च स वेदविद्भुवि द्वित्वमत्र न कदा श्रुतं मया ॥१३॥

पद्मिनी का पति (सूर्य) एक ही है, आकाश में एक ही चन्द्रमा है। ऐसे ही पृथिवी पर वेद के जाननेवालों में वह अकेला था, मैंने इस विषय में दूसरे के अस्तित्व को कभी नहीं सुना।

स्यात्पुनस्तरणिरक्षिगोचरो दृश्यते नभसि चन्द्रमाः पुनः ।
यात एष तु सकृत्सदग्रणीर्बोभवीति विषयो न नेत्रयोः ॥१४॥

सूर्य भी फिर दृष्टिगोचर होता है, आकाश में चन्द्रमा भी फिर दिखाई देता है, परन्तु यह सत्पुरुषों का अग्रणी एक बार जाकर फिर नेत्रों का विषय नहीं होगा।

इन्द्रियार्थोद्भवं ज्ञानं सर्वथा न प्रमात्मकम् ।
तच्च्युतस्स महात्मातः स्मृतावेव निधीयताम् ॥१५॥

इन्द्रिय और अर्थों से उत्पन्न ज्ञान सर्वथा प्रामाणिक नहीं होता, इसीलिए वह महात्मा उससे पृथक् हो गया, अब उसे स्मृति में ही रखिए।

संस्कृता भारती येन वृद्धिं यायादन्तरतम् ।
तस्य नामामरं च स्यादित्येतद् यवसीयताम् ॥१६॥

जिससे संस्कृत वाणी निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हो और उसका नाम अमर हो, ऐसा यत्न करना चाहिए।

ऋषयः कवयो नष्टा विद्वांसोऽपि तथैव च ।
साधूनां मरणात्पश्चादभिधानं तु जीवति ॥१७॥

ऋषि, कवि और विद्वान् सब लुप्त हो गये, साधुओं की मृत्यु के पश्चात् उनका नाम ही जीवित रहता है।

को नाम श्रीदयानन्दात्साधीयान् दृश्यते जनः ।
उज्जीवितार्षविद्या येनास्माभिर्निरपेक्षिता ॥१८॥

श्री दयानन्द के समान साधुपुरुष कौन दीखता है, जिसने हमसे उपेक्षा की गई आर्षविद्या को पुनर्जीवित किया।

सैवैषा नीयतां पुष्टिं स्वकीयहितवृद्धये ।
शास्त्रतत्त्वावबोधेन यूनां संस्क्रियतां च धीः ॥१९॥

उस आर्षविद्या की अपने हित की वृद्धि के लिए पुष्टि करो, शास्त्र के तत्त्वज्ञान से युवकों की बुद्धि को संस्कृत करो ।

कः पद्मिनीनां वद तिग्मदीधिति-
र्धर्मः परः कः कवि वाचि कः स्थितः ।
का कण्ठभूषा न यमाद्विभेति कः
स्वामी दयानन्द सरस्वती यमी ॥२०॥

१. सूर्य पद्मिनी का कौन है ? २. परम धर्म कौन-सा है ? ३. कवि की वाणी में कौन स्थित है ? ४. कण्ठ का भूषण क्या है ? यम से कौन नहीं डरता ?

इनके उत्तर क्रमशः ये हैं - १. स्वामी, २. दया, ३. आनन्द, ४. सरस्वती, ५. यमी ।

★ ★ ★

ईश्वर एक नाम अनेक

कुछ नाम कर्मो के कारण प्रसिद्ध है ।

विश्व को बनाता है इसलिए "विश्वकर्मा", सभी का कल्याण करता है इसलिए "शिव", दुष्टों को दंड देने वाला है इसलिए "रुद्र" इत्यादि ।

कुछ नाम गुणों के कारण प्रसिद्ध है ।

सृष्टि रचयिता है इसलिए "ब्रह्मा", कण-कण में व्यापक है इसलिए "विष्णु", सबसे बड़ा है इसलिए "महेश", सब कालों से परे है इसलिए "अकाल" इत्यादि ।

कुछ नाम सम्बन्धके कारण प्रसिद्ध हुए है ।

सबका अंतर्यामी है इसलिए "परमात्मा", जन्म देने वाली माता के समान है इसलिए "माता" या "अम्बा",
पालन करने वाले पिता के समान है इसलिए "परमपिता" इत्यादि ।

परंतु ईश्वर का अपना निज नाम एक मात्र "ओ३म्" है ।

(वेद - दर्शन - उपनिषद)

॥ ओ३म् ॥

(आर्यसमाज के नियम)

१. सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

२. ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरुप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है उसी की उपासना करने योग्य है।

३. वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है । वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।

६. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७. सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।

८. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

९. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न रहना चाहिए, अपितु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

१०.सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।